अध्याय 2

2.1 (अ) लोकसाहित्य का परिचय एवं वर्गीकरण

- लोकगीत
- लोककथा
- लोकगाथा
- लोकनाट्य
- लोकसुभाषित आदि का परिचय उदाहरण सहित

2.1 (ब) ब्रज लोकसाहित्य का स्वरूप एवं विकास

- ब्रज लोकगीत
- ब्रज लोककथा
- ब्रज लोकगाथा
- ब्रज लोकनाट्य
- ब्रज लोकसुभाषित आदि का परिचय उदाहरण सहित
- **निष्कर्ष**

अध्याय-2

2.1 (अ). लोकसाहित्य का परिचय एवं वर्गीकरण

लोकसाहित्य यह ग्रामीण मानव की सहज एवं सरल आत्माभिव्यक्ति है। लोकसाहित्य यह लोक और साहित्य शब्दों के योग से निर्मित है, लोक का शाब्दिक अर्थ है जन, आमजन, जगत आदि। साहित्य अर्थात् सहित होने का भाव, लोक शब्द संस्कृत में दर्शन या देखना के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त लोक शब्द का उल्लेख वैदिक ग्रंथ ऋग्वेद, महाभारत, भगवद् गीता, रामचरितमानस आदि में मिला है। यहाँ लोक के दो अर्थ मान सकते हैं पहला जगत, समाज और दूसरा आम या सामन्य जनता। लोक का उल्लेख इहलोक और परलोक शब्दों में वैदिक युगीन ग्रन्थों में ज्ञात हुआ है। डॉ.रवीद्र भ्रमर के अनुसार- "साहित्य और संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करनेवाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है किन्तु इस दृष्टि से केवल गाँवों में ही नहीं वरन नगरों, जंगलों, पहाड़ों, और टापुओं में बसा हुआ मानव समाज जो अपने परंपरा प्रथित, रीति-रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होंने के कारण अशिक्षित एवं अल्प सभ्य कहा जाता है; 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है।"[1] "जो लोग संस्कृत या परिष्कृत वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन स्थिति में रहते हैं वे 'लोक' होते हैं।"[2] लोकसाहित्य यह आमजनता की चित्रवृत्तियों की सहज सरल अनुभूति है। बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य को जन समूह के हृदय का विकास कहा है। लोकसाहित्य ग्रामीण जनता का वह साहित्य है जो वटवृक्ष की भांति अपनी विशालकाय भुजाओं को धरती से जोड़े सदियों से अपने अस्तित्व की रक्षा कर रहा है।

लोकसाहित्य को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित किया हैं जिनमें कुछ विद्वानों द्वारा की गई परिभाषाएं निम्नानुसार हैं- डॉ. सत्येंद्र के अनुसार- " लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है ऐसे लोक कि अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं वे लोक-तत्त्व कहलाते हैं।"[3] इसी क्रम में डॉ. श्याम परमार द्वारा दी गई परिभाषा है- "हिन्दी का 'लोक' शब्द 'फोक'(folk) का पर्यायवाची है। 'जन' या 'ग्राम' यद्यपि फोक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, तथापि अपने सीमित क्षेत्र के कारण उन्हें लोक की व्यापकता के अनुरूप नहीं मानना चाहिए। जन प्राचीन शब्द है। 'संस्कृत' एवं 'पालि' ग्रन्थों में मानव समाज का बोध 'जन' से ही कराया गया है। इस दृष्टि से 'जन' और 'लोक' में पर्याप्त समानता है परंतु प्रयोग और परंपरा के प्रचार में आधुनिक 'फोक' की अनुरूपता के लिए लोक ही अधिक उपयुक्त एवं प्रतिबिम्बात्मक है। न केवल इतना ही, बल्कि पूर्व संस्कारों के कारण वह 'फोक'(Folk) से कहीं अधिक विशाल स्तर को स्पर्श करता है।"[4] वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है- "लोकहमारे जीवन का महासमुद्र है; उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है लोक कृतस्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्चय प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथिवि और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शस्त्र है।"[5] उपयुक्त मतों के आधार पर हम कह सकते हैं की लोकसाहित्य यह आमजन समुदाय का साहित्य है जो अनपढ़ होते हुए भी अपनी सांस्कृतिक विरासत को आज भी जीवित रखे हुए है। लोकसाहित्य शिष्ट साहित्य से भिन्न है इस साहित्य का कोई लेखक या प्रस्तोता नहीं है यह आम जनसमुदाय के दु:ख-सुख, वियोग-मिलन, हर्ष-विषाद आदि भावनाओं को जिस तरह व्यक्त करता है वही संचित अनुभूति लोकसाहित्य है। पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परंपरा का अनुसरण करते हुए चला आ रहा है। लोकसाहित्य ग्रामीण जनता के सहज और सरल भाव की अनुभूति है। "डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य को पाँच

भागों में विभाजित किया है, 1. लोककथा 2. लोकगाथा 3. लोकगीत 4. लोकनाट्य 5. प्रकीर्ण साहित्य"[6]

उपर्युक्त विद्वनों द्वारा दी गयी परिभाषाओं एवं वर्गीकरण को आधार मान लोकसाहित्यिक विधाओं का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है।

- **<u>लोककथा</u>**

अंग्रेजी (Folklore) का हिन्दी पर्याय लोककथा या लोकवार्ता है। पृथ्वी पर मानव जन्म के साथ ही लोककथाओं का प्रसार हुआ होगा। मनुष्य की प्रवृत्ति है निरंतर प्रयोग करना खोज करना। अर्वाचीन मानव संस्कारों से बंधा है और इसी प्रवाह में मानव जन्म के साथ संस्कार के कार्य अनिवार्य हो जाते हैं। सोलह संस्कारों में तीन संस्कार विशेष हैं जो जन्म, मृत्यु और शादी के चक्र में व्याप्त है, इन संस्कारों के अधीन ही लोकमानव की संस्कृति सांस लेती है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार- "लोक-कथा विश्व में व्याप्त हैं। इसके अंतर्गत समाज अथवा देश की परम्पराएँ सुरक्षित हैं। वास्तव में लोक-कथाएँ नाना रूपों में लोक-जीवन को आच्छादित किए हुए हैं। आदिकाल से उनका गठबंधन मनुष्य की चेतना से चला आ रहा है। मानव के सुख-दु:ख, प्रीति, श्रृंगार, वीर-भाव और बैर इन सब ने खाद बनकर लोक-कथाओं को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक-विश्वास, पूजा, उपासना, इन सबसे कहानी का ठाठ बनता रहा है। कहानी मनुष्य के लिए अपूर्व विश्रांति का साधन है। मन के आयास को हटाने के लिए कहानी मानव-समाज का प्राचीन रसायन है।"[7] लोकवार्ता ही लोककथा है, डॉ. श्याम परमार के अनुसार लोकवार्ता का विभाजन इस प्रकार है-

1. लोकगीत, लोककथायें, कहावतें, पहेलियाँ आदि
2. रीति-रिवाज, त्यौहार, पूजा-अनुष्ठान, व्रत इत्यादि।
3. जादू-टोना, टोंटकें, भूत-प्रेत संबंधी विश्वास

4. लोकनृत्य,लोकनाट्य आंगिक अभिव्यक्ति इत्यादि।
5. बालक-बालिकाओं के विभिन्न खेल, ग्रामीण एवं आदिवासियों के खेल इत्यादि"[8]

डॉ. सत्येन्द्र ने लोककथा या वार्ता के महत्व को स्पष्ट किया है कि - "पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट, विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़-जगत के संबंध में भूतों-प्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों में विषय में जादू-टोना, वशीकरण, ताबीज, भाग्य शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं और भी इसमें विवाह उत्तराधिकार, बालकल्याण, तथा प्रौढ़जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशुपालन आदि ऋषियों के रीति रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्म, गाथाएं अवदान (लीजेंड) लोक कहानियाँ साका (बैलाड) गीत, किंबदंतियाँ, पहेलियाँ, लोरियाँ भी उसके विषय हैं।"[9] लोककथा यह अंग्रेजी folklore (फोकलोर) का हिन्दी अनुवाद है। किन्तु विद्वानों ने लोककथा एवं वार्ता को पाश्चत्य के फोकलोर से भिन्न माना है।

लोकमानस ने लोककथा का सृजन जन्म से ही किया है, ऐसा कहा जा सकता है। वैदिक शास्त्रों से युक्त कथाएं लोककहानीकार अपने ज्ञान एवं अनुभव से प्रस्तुत करता है। पुराणों से प्राप्त कथाओं को पौराणिक कथाओं एवं आख्यान की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। पुराणों से उद्भूत होने के कारण भी इन्हें पौराणिक कहा जाता होगा इन कथाओं में सृष्टि के अस्तित्व में आने से लेकर उसके विनाश का उल्लेख मिलता है। जिनमें देवी-देवताओं और प्रकृति के तत्त्व वायु, आकाश, भूमि, वृक्ष आदि का निरूपण किया जाता है। भारतीय संस्कृति में लोककथा का स्थान धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। धार्मिक कथाओं में विविध भगवानों से जुड़ी कथाओं का उल्लेख मिलता है जिनमें सत्यवती कथा, सत्यानारायण कथा, महाभारत, रामायण के विभिन्न घटनाओं की कथा जिनमें हनुमान, लक्ष्मी, दुर्गा, शिव-पार्वती आदि इष्टों से संबंधित कथाएं मिलती हैं। लोककथाओं को विषय एवं विशेषता के अनुरूप विभाजित किया गया है। लोककथा की कलात्मक शैली साहित्यिक

कहानियों के कथा से भिन्न होती है। लोककथाओं के वर्गीकरण विभिन्न विद्वानों ने नवीन अन्वेषण के अनुसार किए हैं जिनमें कृष्णदेव उपाध्याय का वर्गीकरण है -

1. नीतिकथा
2. व्रतकथा
3. प्रेमकथा
4. मनोरंजन कथा
5. दंत कथा
6. पौराणिक कथा"[10]

डॉ. सत्येन्द्र ने स्थूल रूप से लोककथाओं को आठ भागों में विभाजित किया है-

1. गाथाएँ
2. पशु-पक्षी संबंधी अथवा पंचतंत्रीय
3. परी की कहानियाँ
4. विक्रम की कहानियाँ (Adventures)
5. बुझौबल संबंधी
6. निरीक्षण गर्भित कहानियाँ
7. साधु-पीर की कहानियाँ (Hageological)
8. कारण निर्देशक कहानियाँ (Acteological)"[11]

लोककथाओं का रचना संसार बृहद है, उपयुक्त विभाजन के अनुरूप विभिन्न लोककथाओं का वर्णन मिलता है। प्रेम कथाओं के अंतर्गत पारिवारिक संबंधों की कथाएं देखने को मिलती हैं

जिनमें पति-पत्नी, दाम्पत्य जीवन कि कामवासना रहित प्रेमकथाएं, माता-पुत्र, भाई-बहन आदि प्रेम की रोचक एवं सुंदर कथाएं मिलती हैं जिन्हें बच्चे बड़े सभी उत्सुकता से सुनते हैं।

सामाजिक कथाओं में बाल-विवाह, बहू-विवाह, न्याय आदि विषयों का उल्लेख समाजसुधारक कथाएं प्राप्त होती हैं । पौराणिक कथाओं में राजा हरिश्चंद्र, नल-दमयंती स्वयंवर, सत्यवती कथा, गोपीचन्द, श्रवणकुमार, भरथरी आदि कथाओं का उल्लेख मिलता है । इसके अतिरिक्त धार्मिक कथा, वीरकथा, परीकथा, बालकथा आदि कथाओं के माध्यम से लोकमानव को हितोपदेश देने का कार्य लोककथाकार करता रहा है तथा समाज को नीति-पालन एवं आदर्शवादी बनाने का प्रयास करता है।

- **<u>लोकगाथा</u>**

लोकगाथा यह गेयात्मक कथा होती है, लोकगाथा को पाश्चात्य साहित्यकार folk-ballads (फोकबैलेड) या Lyrical Ballad (लिरिकल बैलेड) नामों से अभिहित करते हैं। लोकगीत और लोकगाथाओं दोनों ही गेयात्मक है । लोकगाथा में कथा की प्रधानता होती है । लोकगाथा अन्य लोकसाहित्यिक प्रवृत्तियों विशाल होती है, लोकगाथा में कथावस्तु गेयात्मक है तथा छोटे-छोटे गीतों से मिलकर एक बड़ी कथा निर्मित होती है इस तरह कहा जा सकता है कि लोकगाथा यह महाकाव्य के समान जिस के अंतर्गत गीत, वाद-संवाद का मिश्रण होता है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीत को हृदय का धन और महाकाव्य को मस्तिष्क का धन स्वीकार किया है। लोकगाथा में ऐतिहासिकता का पुट होता है। जिससे आदिकालीन प्राप्त महाकाव्य कहीं न कहीं लोकगाथात्मक रूप में लोकमानव गाता है। "कजली होली, चैता, सोहर, जँतसार, भजन, और पराती आदि गीति काव्य की कोटि में रखे जा सकते हैं और आल्हा, विजयमल, लोरकी, हीर-रांझा, ढोला-मारू राजा रसालू क गीतों को

प्रबंध काव्य कहा जा सकता है।"[12] लोककहानीकारों को गाथा प्रस्तुत करने में विशिष्ट योग्यता हासिल होती है, लोकगाथा यह गेयात्मक गीतिकथा है, प्रस्तोता गीतों के माध्यम से ऐसा रोमांचक वातावरण उत्पन्न करता है कि प्रत्येक श्रोता, दर्शक, उससे बंधे रहते हैं और कथा को उत्कर्ष तक ले जाकर माहौल बनाते हैं जिससे जनता मंत्रमुग्ध हो जाती है।

लोकसाहित्यिक विधा लोकगाथा को विद्वानों ने कुछ इस प्रकार वर्गीकृत किया है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगाथाओं को तीन भागों में बांटा है-

1. प्रेम-कथात्मक गाथा (Love Ballad)

2. वीर-कथात्मक गाथा (Heroic Ballad)

3. रोमांच-कथात्मक गाथा (Uprendural Ballad)"[13]

प्रो. गूमर ने लोकगाथाओं को छ: भागों में विभक्त किया है,-

1. प्राचीनतम गाथाएँ (Oldest Ballad)

2. कौटुंबिक गाथाएँ (Ballads of Kinship)

3. आलौकिक गाथाएँ (Coronach and ballads of Supernatural)

4. पौराणिक गाथाएँ (Legendary Ballads)

5. सीमांत गाथाएँ (Border Ballads)

6. आरण्यक गाथाएँ (Greenwood Ballads)"[14]

"भारतीय लोकगाथाओं में उपदेशात्मक की प्रवृत्ति कहीं-कहीं पाई जाती है यद्यपि गायक और समाज में एक प्रकार की अविच्छित्रता है। प्राय: भारतीय लोकगाथों में शौर्य, प्रेम, देशभक्ति,

आज्ञापालन, आदि अनेक प्रसंग पाये जाते हैं। गाथाओं में वर्णित चरित्रों के त्याग, तपस्या, सतीत्व आदि से शिक्षा तो मिलती ही है। इन आदर्श चरित्रों से हृदय आकर्षित व श्रद्धावनत भी होता है।"[15]

भारत में लोकमंगल की भावना से ओत-प्रोत कथाओं का सागर है। प्रेम, वीर, वात्सल्य, रोमांच से संबन्धित गाथाओं का उल्लेख इतिहास में मिलता है। पाश्चात्य में इंग्लैंड रॉबिनहुड की कथा किसको ज्ञात नहीं ठीक इसी तरह भारत में भी कुछ समाजसेवी डाकुओं का उल्लेख मिलता है यह डाकु अमीरों को लूटकर गरीबों की सहायता करते थे। जिसमें पश्चिमी उत्तर-प्रदेश की सुल्ताना डाकू, आगरा-ग्वालियर के डाकू मानसिंह, राजस्थान के जोरावरसिंह आदि के किस्से लोकगाथाओं में प्रचलित है। लोकगाथाओं में राजस्थान की प्रख्यात ढोला मारू रा दूहा, बुंदेलखण्ड की आल्हा-उदल वीर गाथा, मध्यप्रदेश जगदेव की गाथा, पंजाब के राजा रसालू आदि लोकगाथाओं में ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति का परिचय प्राप्त होता है। डॉ. कुंदनलाल उप्रेती ने प्रेमकथात्मक गाथाओं में भारत विविध राज्यों में प्रचलित गाथाओं का विवरण दिया है। भोजपुरी की कुसुमदेवी, भगवती देवी, बिहुला की कथा, भरथरी, राजस्थान के ढोला- मारू, पंजाब के हीर-रांझा आदि की गाथाओं ने लोकमानव को रस मग्न किया है।

- **<u>लोकगीत</u>**

लोकसाहित्यिक विधाओं में लोकगीत सबसे महत्त्वपूर्ण और परिपूर्ण विधा है। मानव जन्म से मृत्यु तक सोलह संस्कारों के वृत्त में जीवनयापन करता है। यही लोकगीत संस्कारों के निर्वहन में अहम भूमिका निभाते आए हैं। लोकसाहित्य में लोकगीत को सर्वसम्मपन विधा माना जाता है। लोकगीतों को विविध विद्वानों ने परिभाषित किया है जिनमें पंडित रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार

"ग्रामगीत प्रकृति के उदगार है इनमें अलंकार नहीं केवल रस है छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है!!! ग्रामीण मनुष्य के स्त्री-पुरूष के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गीत ग्रामगीत है।"[16] "आदिम मनुष्य हृदय के ज्ञानों का नाम लोकगीत है। मानव-जीवन की उसके उल्लास की उसकी उमंगों की उसकी करुणा की उसके रुदन की उसके समस्त सुख-दु:ख की।"[17] बाबु गुलाबराय ने लोकगीत के साधारणीकरण पर कहा है कि - "लोकगीतों के निर्माता प्राय: अपना नाम अव्यक्त रखते है और कुछ में यह व्यक्त भी रखता है। वे लोकभावना में अपने भाव मिला देता है। लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है।"[18] "लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्व-मानव की भूमि पर प्राप्त हुई है।"[19] इसी क्रम में डॉ. सदाशिव फडके का कथन है- "शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोकव्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद-तरंग में जो छंदोबध्द वाणी सहज उद्भूत करता है,वह लोकगीत है।"[20] लोकगीतों के अस्तित्व को बनाए रखने से उसकी रसात्मक अनुभूति को जीवित रखने का श्रेय महिलाओं को हैं। स्त्रियाँ लोकगीतों का केंद्र बिन्दु है, जन-जीवन के उतार चढ़ाव को इन लोकगीतों के माध्यम से महिलाएं संवेदना के शब्दों में गूँथ के गाती है और इस तरह प्रतिदिन नये लोकगीतों का उदय होता है। संस्कारों की दृष्टि से लोकगीतों में गर्भाधान, पुंसवन, यज्ञोपवीत, मृत्यु के बाद के गीत आदि हमारे संस्कार में प्रधान है। कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों के वर्गीकरण की विभिन्न पद्धतियों का उल्लेख किया है-

- "गीत विभिन्न उत्सवों तथा ऋतुओं में गाये जाते है
- संस्कारों की दृष्टि से
- रसानुभूति की प्रणाली से
- ऋतुओं और व्रतों के क्रम से
- विभिन्न जातियों के प्रकार से

- क्रिया-गीत की दृष्टि से"[21]

लोकगीत हमारे निजी जनजीवन एवं विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। लोकजीवन और संस्कृति एक दूजे से जुड़े हुए है। लोकगीतों के वर्गीकरण के विषय में पंडित रामनरेश त्रिपाठी का विभाजन भी उल्लेखनीय है।

1. संस्कार संबंधी गीत

2. चक्की और चरखे के गीत,

धर्म गीत त्यौहारों पर गाये जानेवाले गीत भजन आदि

3. ऋतु संबंधी गीत सावन फाल्गुन और चैत्र के गीत

4. खेती के गीत

5. भिखमंगों के गीत

- मेले के गीत

- भिन्न-भिन्न जातियों के गीत, जैसे अहीर, चमार, धोबी, पासी कुम्हार आदि।

- वीरगाथा जैसे आल्हा, लोरिकी, हीर-रांझा ढोला-मारू आदि।

- गीतकथा, छोटी-छोटी कहानियाँ जो गा-गाकर कही जाती है

- अनुभव के वचन जिन्हें घाघ, भण्डारी आदि श्रेणियों में विभक्त किया है।"[22]

डॉ. श्याम परमार के अनुसार "लोकगीत निर्वैयक्तिक हैं। उन्हें समूह द्वारा निर्मित माना जाता है, इसलिए व्यक्तित्व का अभाव और समूह अथवा जातीय विशेषताओं के लक्षण उनमें मिलते हैं, संक्षेपत-

1. अकृत्रिमता

2. सामूहिक भाव-भूमि

3. परंपरागत अथवा मौखिक परंपरा के गुण

4. रूढ़ अतिशयोक्ति और

5. संगीतात्मकता आदि गीतों की विशेषताएँ हैं।"[23]

लोकगीतों के माध्यम से लोक मानव अपने उत्थान एवं पतन की कथा कहता है। जीवन के क्षणिक अनुभूतियों का उल्लेख गीतों में मिलता है, लोकगीत चाहे किसी भी भगवान अन्वेषणकर्ताओं के अनुसार इन गीतों में इतिहास का भी दर्शन होता है। लोकगीतों की विशेषताओं का वर्णन डॉ. मोहनलाल बाबुलकर इस प्रकार की है कि-

1. गीत मौखिक परंपरा से संचित विधियाँ हैं।
2. ये आपौरुपेय (वेदों के रूढ़िवादि अर्थ में) हैं।
3. इनमें नाम और यश की लालसा नहीं होती।
4. ये बनते और बिगड़ते रहते हैं।
5. इनका मूल रूप अप्राप्य होता है।
6. गेयता इनका प्रमुख लक्षण है।
7. देशकाल की सीमा का बंधन इनके साथ नहीं होता
8. इनमें जीवन के अभाव व्यक्त होते हैं, अंकित नहीं।
9. इनमें मानवीय संस्कृति का सारल्य और भावों का व्यापक उभार होता है।
10. इनके स्वरूप में देश की प्रकृति और संस्कृति निहित रहती है।
11. कृत्रिमता के अभाव में लोक की ये स्वाभाविक सजावट रहित अभिव्यक्तियाँ हैं।
12. इनकी भाषा लोक की बोली है, छंदोबद्ध काव्य की भाषा नहीं।

13. ये शहरी वातावरण से दूर रहते हैं। इनमें ग्राम्यांचल की प्रकृति, वातावरण, मानव-जीवन, ऋतु आदि का चित्रण होता है।

14. सामान्य भाव-भूमि का अंकन, लोक-कल्याण की दृष्टि, सामूहिक वृत्ति तथा स्वच्छंदता इनका नित्य लक्षण होता है।"[24]

जन-जीवन से जुड़ा ऐसा कोई विषय नहीं है जो लोकगीतों में नहीं आया हो। आमजनता अपने सुख-दु:ख, हर्ष-उल्लास जन्म-मृत्यु जीवन की अन्य अनुभूतियों को स्वरमय कर अपने मन को प्रफुल्लित करता है। ऋतु संबंधी गीतों में सावन, चैत, फागुन, अगहन के गीत गाये जाते हैं, संस्कार गीतों में गर्भावस्था से पुंसवन और यज्ञोपवीत, छोछक आदि गीत मिलते हैं। लोकगीतों को संस्कारों से ऐसा संबंध है जैसे मानव का हृदय से। संस्कारों के बिना हमारा अस्तित्व अधूरा है। हमारी सांस्कृतिक मूल्यों का आधार लोकसाहित्य है।

संस्कार गीत का एक सुंदर उदाहरण-

"रघुनंदन फुले न समाये

लगुन आई हरे-हरे, लगुन आई मेरे अंगना"

सोबर एवं जच्चा गीतों का एक उदाहरण-

लालन कू है जनम दिन अब

खुशियों कौ आया है।

आजकल के बहू के विषय में ब्रज लोकगीत है जिसमें बहू सास से कहती है कि अपने पति से दिनबीती सुनाऊँगी और तुम्हारी शिकायत करुंगी

आने दै मोरे भोले खसम कुं

एक-एक की दोय-दोय लगायाई दूँगी

उपयुक्त अवसरों पे गाये जाने वाले गीतों का सागर है, भारतीय लोकसाहित्य विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध है। लोकगीतों में जन्म गीत में सोबर,जच्चा गीत गाये जाते हैं। मुंडन के गीत, विवाह के गीत, लगुन,तिलक के गीत, भात के गीत, हल्दी-महंदी के गीत, कुआँ-पूजने के गीत, बारात गीत, कन्यादान गीत, गारी गीत, विदाई गीत, होली,दिवाली के गीत, देवी-देवताओं के गीत, छठ के गीत, करवाचौथ के गीत, जाति गीत, ऋतु गीत आदि गीतों का समुद्र लोकसाहित्य में प्राप्त होता है।

- **<u>लोक-नाट्य</u>**

लोक-नाट्य यह पाश्चात्य के Folk Drama (फोक ड्रामा) हिन्दी पर्याय है। भारत में नाटक का सर्वप्रथम उल्लेख भरत मुनि ने किया अत: नाट्यशास्त्र से नाटक का सूत्रपात्र हुआ होगा भरत मुनि ने नाटक को पांचवा वेद कहा है। कालीदास के अभिज्ञानशाकुंतलं में 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' इस संज्ञा को लोक नाट्य की दृष्टि से परिपूर्ण माना गया है यह अपरिमार्जित अभिनय एवं वाचिक अभिवयक्ति के साथ लोकमानव द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। लोकनाट्य यह बिना किसी रंगमंच के ग्रामीण क्षेत्रों में चौपाल, चबूतरों पर अभिनीत किया जाता है। लोकनाट्य को विविध बुद्धि मनीषियों परिभाषित किया है। डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ने लोकनाट्य के ग्रामीण आवरण का विवरण देते हुए लिखा है कि- "लोक-नाटक शास्त्रीय तंत्र तथा रचना- विधान से इतर लोक-मानस की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, जिसमें लोक-परंपरा तथा चिर विकसित नाट्य-रूढ़ियों का प्रदर्शन लोक-मंच पर होता है, जो व्यावसायार्थ न होकर अखाड़े के रूप में गली-गलियारों में विद्यमान रहता है। सभी लोक-क्षेत्रों के उपादानों से निर्मित नाटकों का रचयिता भी लोक ही होता है।"[25] डॉ. पुरोहित नारायण दास के अनुसार- लोकनाट्यों का उद्भव एवं विकास सहस्त्रों वर्षों की सतत साधना एवं मानवीय सभ्यता तथा संस्कृति के उतरोत्तर उत्कर्ष की कहानी है। लोकनाट्य आदिम काल में

विकसित हुआ और कालांतर में इसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ। जब इनमें नृत्य की अपेक्षा गेयत्व और नाट्य की प्रधानता हुई। अत: लोकनाट्य के अंतर्गत वे सभी लोक-रंग आते हैं जो प्रधान होते हैं और जिसमें नाटयांश भी विकासावस्था में जोड़ा गया मिलता है।"[26] लोकनाट्य यह मंचीय लोकसाहित्यिक विधा है लोकसाहित्य के पाँच तत्त्वों के विलय कि विधा है जिसमें गीत, संगीत, कथा, नृत्य, अभिनय एवं संवाद का समावेश होता है। यह पाँच तत्त्व एक जगह पर एकत्रित होकर नाट्य की रचना करते है। लोकनाट्य के प्रांगण में स्वांग, नौटंकी, रासलीला, संगीत, नृत्य, गरबा, आदि अपनी आँचलिकता को प्रस्तुत करते हुए सदियों से विद्यमान हैं। डॉ. श्याम परमार के अनुसार-" आँचलिकता इनमें सोलह आने भरी हुई है, जो अभिजात संस्कृत प्राकृत नाटकों में और आचार्यों द्वारा परिभाषित विविध रूपकों में बिलकुल नहीं मिलती।"[27] डॉ. श्याम परमार ने लोक-नाट्य की परिभाषा देते हुए लिखा है- "लोक-नाट्य लोक रंजन का आडंबरी साधन है, जो नागरिकों के मंच से अपेक्षाकृत निम्न स्तर का, पर विशाल जन के हर्षोल्लास से सबंधित है। ग्रामीण जनता में इसकी परंपरा युगों से चली आ रही है। चूंकि 'लोक' में ग्रामीण एवं नागरिक जन सम्मिलित हैं। अत: लोक-नाट्य एक मिले-जुले जन-समाज का मंच है। परिष्कृत रुचि के लिए लोक जिन नाटकों का विधान हैं, उसकी आधार-भूमि यही लोक-नाट्य हैं।"[28] लोक-नाट्य लोकमानव का अनुरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन है। लोक-नाट्य को विद्वानों ने इस प्रकार विभाजित किया है, डॉ सत्येंद्र के अनुसार-

1. नृत्य प्रधान (रास)
2. नाट्य हास्य प्रधान (भाँड)
3. संगीत प्रधान कथाबद्ध नौटंकी, भगत आदि
4. नाट्य वार्ता प्रधान"[29]

डॉ. कुंदनलाल उप्रेती के अनुसंधान के आधार पर लोकनाट्य का विभाजन

1. धार्मिक, ऐतिहासिक तथा किंवदंतियों पर आधारित(रामलीला, हरिश्चंद्र आदि)

2. नृत्य प्रधान (रासलीला आदि)
3. संगीत प्रधान (भगत, माँच, नौटंकी आदि)
4. हास्य प्रधान (भाँड आदि)
5. नाट्य वार्ता प्रधान।"[30]

समयानुसार परिवर्तन के साथ लोकनाट्य मात्र मनोरंजन या हास्य का साधन नहीं लोकनाट्य के माध्यम समाज को दुषित करती रूढ़ियों और आडंबर पर व्यंग्य कर लोकनाट्य सुधारक मंच के रूप में समाज में कार्यरत है। भारत के प्रसिद्ध लोकनाट्य का उल्लेख डॉ. कुंदनलाल उप्रेती ने अपनी पुस्तक लोकसाहित्य के प्रतिमान में किया है। भारत के विभिन्न प्रदेशों के लोकनाट्य इस प्रकार हैं कि दक्षिण भारत का 'यक्षगान' यह तमिल, तेलगु , कन्नड़ भाषाओं में खेला जाता है। आन्ध्रप्रदेश के तेलंगाना में इसे 'विधि भगवतम्' कहते है। तेलगु का 'वीधि नाटकम्' लोकमंच है इस मंच पर 'कुचिपुडि' कलाकार अपना अभिनय प्रस्तुत करते हैं। 'तोलबोम्मलु' 'कामनकोट्टु' दक्षिण भारत का लोकप्रिय लोकनाट्य है यह पूस माह में 'पोंगल' के अवसर पर खेला जाता है। महाराष्ट्र का प्रसिद्ध लोकनाट्य 'तमाशा' है, इसके अतिरिक्त 'ललित' एवं 'गोंधल' भी खेला जाता है जिसमें जोड़ा होता है जो नकल और स्वांग कर हास्य अभिनय करता है। 'जात्रा' बंगाल, उड़ीसा तथा पूर्वी बिहार में प्रचलित है इसमें पुरूष ही स्त्री बन अभिनय करते हैं क्योंकि स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है। बंगाल के 'गम्भीरा' लोकनाट्य में शिव जी की लीलाओं का अभिनय किया जाता है। गुजरात का 'भवाई', और 'गरबा नृत्य' विश्व प्रसिद्ध है इसमें विदूषक को 'रंगलों' कहा जाता है भवाई की सफलता 'रंगलों' पर निर्भर करती है। 'कठपुतली', 'ख्याल', 'माँच', राजस्थान एवं मालवी क्षेत्र का प्रसिद्ध लोकनाट्य हैं। 'नौटंकी', 'स्वांग' एवं 'भगत' उत्तर भारत के प्रचलित लोकनाट्य हैं। ब्रज की रासलीला, रामलीला त्यौहारों के अवसर पर खेली जाती है दशहरे के अवसर पर समग्र भारत में रावण दहन एवं रामलीला के भव्य आयोजन होते हैं। भारत के प्रत्येक प्रांत में विभिन्न प्रकार के लोकनाट्य आज भी खेले जाते हैं।

- **<u>लोकसुभाषित या प्रकीर्ण साहित्य</u>**

लोकसाहित्य विधाओं में लोकोत्तियों को यथोचित स्थान प्राप्त है। ग्रामीण जनता रोज़मर्रा के व्यवहार में बोलचाल में सैकड़ों मुहावरों, कहावतें, गाली का प्रयोग करते हैं यहाँ ग्रामीण मानव अपने भावों को व्यक्त करते समय उत्तेजित हो जाता है और गाली का भी उपयोग करता है गाली झगड़े या लड़ाई के उद्देश्य से नहीं दी जाती अपनी बात को रोचक एवं प्रभावशाली बनाने के लक्ष्य से की जाती है। जिसका अन्य व्यक्ति बुरा भी नहीं मानता देहात में मन बहलाने के लिए खेल-खेल में पहेलियों का प्रयोग करते हैं। बुझौबल बूझो तो जाने बोलकर बच्चे खेलते हैं और बुद्धि की परीक्षा लेते हैं, लोकमानव दैनिक व्यवहार में लोकोत्तियों के प्रयोग से अपने नैतिक विचारों के साथ लौकिक तत्वो के ऐतिहासिकता उदघाटन होता है। लोकोत्तियों साथ अपने गुण-दोष का भी वर्णन करता है। कुछ ग्रामीण लोग अपना एक तकियाकलाम बना कर हर बात में उसी का प्रयोग करते हैं। बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक के जीवन चक्र में मानव लोकोत्तियों, मुहावरों, खेलगीत, पहेलियाँ, सुकत्तियों का प्रयोग करते हैं , यही प्रकीर्ण साहित्य है। लोक सुभाषित या प्रकीर्ण साहित्य को कृष्णदेव उपाध्याय ने पारिभाषित करने का प्रयास किया है- "लोकोत्तियाँ अनुभव सिद्ध ज्ञान निधि हैं। मानव ने युग-युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है उनका प्रकाशन इनके माध्यम से होता है। ये चीर कालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। समास रूप में चिर संचित अनुभूत ज्ञानराशि का प्रकाशन इनका प्रधान उद्देश्य है। शताब्दियों से किसी जाति की विचारधारा किस ओर प्रवाहित हुई है, यदि इसका दिग्दर्शन करना हो तो उस जाती की लोकोत्तियों का अध्ययन आवश्यक है।"[31] अनुसंधान एवं शोध के आधार पर कहा जा सकता है कि लोकोत्तियों की सत्ता अति प्राचीन है वेदों में भी इनकी उपलब्धता यह सिद्ध करती है। लोकोत्तियाँ सार्वभौमिक है सार्वकालिक है जिनके रचयिता अज्ञात हैं

। उदाहरण स्वरूप ‘बड़े का कहा और आंवले का खाया पीछे मीठा लगता है’, ‘धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का’, कहावतें दैनिक व्यवहार में उपयोग में ली जाती हैं। ‘राई का पहाड़ बनाना’, ‘हाथ में दही जमाना’, ‘हाथा झुलाते आना’, आदि मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न लोकसाहित्यिक प्रबंधों के आधार पर परिणाम स्वरुप लोकोत्तियों का संग्रह अभी तक इतना नहीं हो सका है जितना होना चाहिए। जन जीवन के सभी अवसरों एवं अनुभव लोकोत्तियों में भी प्राप्त होते हैं।

अध्याय 2

2.2 (ब.) ब्रज लोकसाहित्य का स्वरूप एवं विकास

लोकसाहित्य यह लोकमानव के मस्तिष्कपटल पर स्वानुभूति की स्याही से लिखा साहित्य है। लोकसाहित्य की परिभाषा एवं वर्गीकरण का प्रयास विविध लोकसाहित्य अध्येताओं ने किया है जिसका उल्लेख हम विगत पृष्ठों पर कर आए हैं। लोकसाहित्य यह एक जनवादी एवं जीवन व्यापी दृष्टि है, लोकसाहित्य यह समूहिक अनुभूति है, साहित्य समाज का दर्पण है तो लोकसाहित्य ग्रामीण जनता के हृदय का। किसी भी देश की संस्कृति की ख्याति उसके लोकआचरण से होती है भारत में विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएं एवं बोलीयाँ हैं जिसका अपना अलग-अलग लोकसाहित्य आज भी उपलब्ध है। शिष्ट साहित्य और लोकसाहित्य में कुछ भिन्नता है, शिष्ट साहित्य को दो भागों में बांटा गया है गद्य और पद्य, लोकसाहित्य भी दो भागों में विभाजित है गद्य और पद्य, गद्य के अंतर्गत लोकगाथा एवं लोककथा का समावेश होता है और पद्य में लोकगीत एवं अन्य का समावेश होता है। कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य और साहित्य की भिन्नता को दर्शाते हुए लिखा है कि- "चिरकाल से अर्जित ज्ञान राशि का नाम साहित्य है। जो साहित्य साधारण जनता से संबंध रखता है उसे लोकसाहित्य कहते हैं। जिस प्रकार साधारण जनता का जीवन नागरिक जीवन से भिन्न होता है ठीक उसी प्रकार उनका साहित्य भी आदर्श साहित्य से पृथक होता है।"[32] साहित्य देश, समाज सभ्यता का आधार स्तंभ है। लोकसाहित्य लिखित नहीं है यह वाचिक परंपरा के सहारे सदियों से संस्कृति के प्रवाह में प्रवाहित होता चला आया है। भारतीय लोकसाहित्यकारों ने पाश्चात्य से प्रेरित होकर लोकसाहित्य को संजोने का प्रयास किया है, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. सत्येन्द्र, कृष्णदेव उपाध्याय, प्रभुदयाल मित्तल, श्याम परमार, झवेरचंद मेघाणी एवं अनगिनत शोधप्रेमी आदि

लोकसाहित्य अध्येताओं ने विभिन्न भाषाओं के लोकसाहित्य के अप्रकाशित साहित्य संकलन कर उसे हस्तलिखित कर पृष्ठबद्ध किया है।

ब्रज लोकसाहित्य से अभिप्राय है कि ब्रज भाषा एवं ब्रज क्षेत्र के लोकसाहित्य का अध्ययन कर ब्रज के लौकिक सहृदयता को सहज कर प्रस्तुत करना। "आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृतियों में 'लोक' का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन-समाज, जिसमें पूर्व संचित परंपराएं भावनाएं, विश्वास और आदर्श सुरक्षित है तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामाग्री ही नहीं अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे हैं।"[33] यहाँ ब्रज लोकसाहित्य को हम रामनरेश त्रिपाठी के विभाजन अनुसार वर्गीकृत कर सकते हैं, 1. ब्रज लोककथा, 2. ब्रज लोकगाथा, 3. ब्रज लोकगीत, 4. ब्रज लोकनाट्य और 5. ब्रज लोकोत्तियाँ

- **ब्रज लोककथा एवं लोकगाथा**

लोकमनुष्य जो भी अनुभव करता है घटित परिस्थितियों के मोतियों को अनुभूति के साथ कल्पना सूत्र के धागों में पिरोकर कथात्मक रूप से व्यक्त करता है वह लोककथा लोकवार्ता है लोककथा की परिभाषा के विषय में डॉ हरद्वारी लाल शर्मा के कथन हैं- "आज लोककथा को आदिम मानव के अविकसित, अर्द्धविकसित मन से उपजी बेसिर-पैर की गढ़त कहकर चल देना संभाव नहीं रह गया है, क्योंकि इसके स्वरूप (क्या?) यदि स्त्रोत और रचना विधान (कैसे?) और इसके विवेचन और व्याख्या (क्यों?) से सबद्ध प्रश्नों का उत्तर खोजने में नृविज्ञान, समाज विज्ञान, इतिहास, साहित्य शास्त्र, दर्शन, धर्म, जीव-विज्ञान, और मनोविज्ञान आदि सौ वर्षों से भी अधिक समय से लगे हुए हैं। विचार आगे बढ़ा है, किन्तु गुत्थी अभी सुलझाई नहीं जा सकी है। मानव मन की मामूली सी दिखनेवाली एक झलक खरगोश और कछुवे की कहानी, गरुड़ का स्वर्ग से अमृत-कलश लेकर उड़ना, प्रोमिथियस द्वारा स्वर्ग से अग्नि कि चोरी, वैष्णवी और देवी-देवियों की कथाएँ, कभी समाप्त न

होनेवाली लोक चर्चाएं ये सब और साधारण से मिथक और आख्यान-आख्यायिकाएं अपनी पूरी और प्रमाणिक जानकारी के लिए एक नए विज्ञान की अपेक्षा रखते हैं। यही लोक-कथा का विज्ञान है।"[34] लोककथाओं का उद्भव तभी से है जब से पृथ्वी पर मानवजीवन का। मानव की प्रवृत्ति रही है कि वह हर बात कथा में गढ़कर कहता है शायद तभी से लोककथाओं का उद्भव हुआ होगा। पौराणिक ब्रज लोककथाओं में देवी-देवताओं, जादुई-तिलस्मी, प्रेमकथाएं, व्रत कथाएं, आदि कथाओं का अक्षत भंडार है श्रुति परंपरा कहे या वाचिक परंपरा के वहन से आधुनिक युग में ये लोककथाएं आज भी विद्यमान हैं। डॉ सत्येन्द्र के अनुसार – "वेदों की बीज कहानियाँ ही पुराणों की कथाओं में पल्लवित पुष्पित हुई है। इन कथाओं में मूल प्राय: वेदों में देखे जा सकते हैं।"[35] डॉ. कुन्दन लाल उप्रेती ने लोककथा की परिभाषा इस प्रकार की है- "वास्तव में कथा की ऐसी मौखिक परंपरा जिसमें लोकमानस के तत्त्व विशेष रूप से विद्यमान हों और जिनका उद्देश्य जन-मनोरंजन के अतिरिक्त प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से ज्ञानवर्धन भी हो, वही हमारी दृष्टि से लोककथा है।"[36]

डॉ. सत्येन्द्र ने ब्रज लोककथाओं वैदिक कहानियों से लेकर आधुनिक युग की कहानियों के स्त्रोतों का वर्णन किया है, आदिकालीन कथाओं का उल्लेख करते हुए वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि-प्राकृत अपभ्रंश आदि कथाओं का विवरण दिया है। पंचतंत्र की कथाएं, बौद्ध की जातक कथाएं, नचिकेता, पुरुरवा-उर्वशी की शतपथ ब्राह्मण कथा, जैन कथाएं पउमचरिऊ आदि ख्यातिलब्ध आदिकालीन कथा साहित्य क्षेत्रिय बोली व देशभाषा में प्राप्त हुई। ब्रज लोककथाओं के उत्पत्ति के विषय में डॉ. सत्येन्द्र का कथन है- "ब्रजभूमि ही एक ऐसा क्षेत्र है, जहां से कहानियाँ संपूर्ण भारत में व पाश्चात्य देशों में सर्वत्र व्याप्त हुई हैं। हमारे प्रचलित कहानी ग्रंथ पुराण व धर्मशास्त्र इत्यादि समस्त सामाग्री को दृष्टिगोचर करने से यही विदित होता है कि ब्रजभूमि ही मौलिक कहानियों की उद्भाविका थी।"[37] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोककथा के विषय में कहा है कि- "लोककथा विश्व व्याप्त है। इसके अंतर्गत समाज अथवा देश की परम्पराएं सुरक्षित हैं। वास्तव में लोककथाएं नाना रूपों में लोकजीवन को आच्छादित किए हुए हैं। आदिकाल से उनका गठन बंधन मनुष्य की

चेतना से चला आ रहा है । मानव के सुख-दु:ख, प्रीति-शृंगार, वीर-भाव और बैर इन सबने खाद बनकर लोककथाओं को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास पूजा, उपासना इन सबसे कहानी का ठाठ बनता रहा है । कहानी मनुष्य के लिए अपूर्व विश्रोती का साधन है । मन के आयास को हटाने के लिए कहानी मानव समाज का प्राचीन रसायन है ।"[38] लोकसाहित्य समझने व सरल बनाने के उद्देश्य से लोकसाहित्यिक विधाओं का वर्गीकरण किया गया।

- लोककथाओं का वर्गीकरण डॉ सत्येन्द्र ने इस प्रकार किया है-

"साधारणत: स्थूल दृष्टि से कहानियाँ आठ बड़े भागों में बांटते हैं-

1. गाथाएँ
2. पशु-पक्षी संबंधी अथवा पंचतंत्रीय
3. परी की कहानियाँ
4. विक्रम की कहानियाँ (Adventures) बुझौबल-संबंधी
5. बुझौबल संबंधी
6. निरीक्षण गर्भित कहानियाँ
7. साधु-पीर की कहानियाँ (Hageological)
8. कारण निर्देशक कहानियाँ (Acteological)"[39]

- डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा ने लोककथाओं का वर्गीकरण वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध तरीके से किया है-

1. मिथक कथाएं (Myths)
2. संस्कृति के नायकों की कथाएं (Legends and culture heros)
3. पशु कथाएं
4. सीख कथाएं (Fables, Parafables)
5. परी कथाएं (प्रेम कथाएं भी)

6. वीर कथाएं (Saga heroic tales)
7. बाढ़बोल डींग, गप्प
8. दादी-नानी की कहानियाँ
9. लोकोत्तियाँ
10. व्यंग्य, विनोद, परिहास, चोट चुटुकला"[40]

ब्रज लोककथाओं का वर्गीकरण निम्न डायग्राम से समझिए"[41]

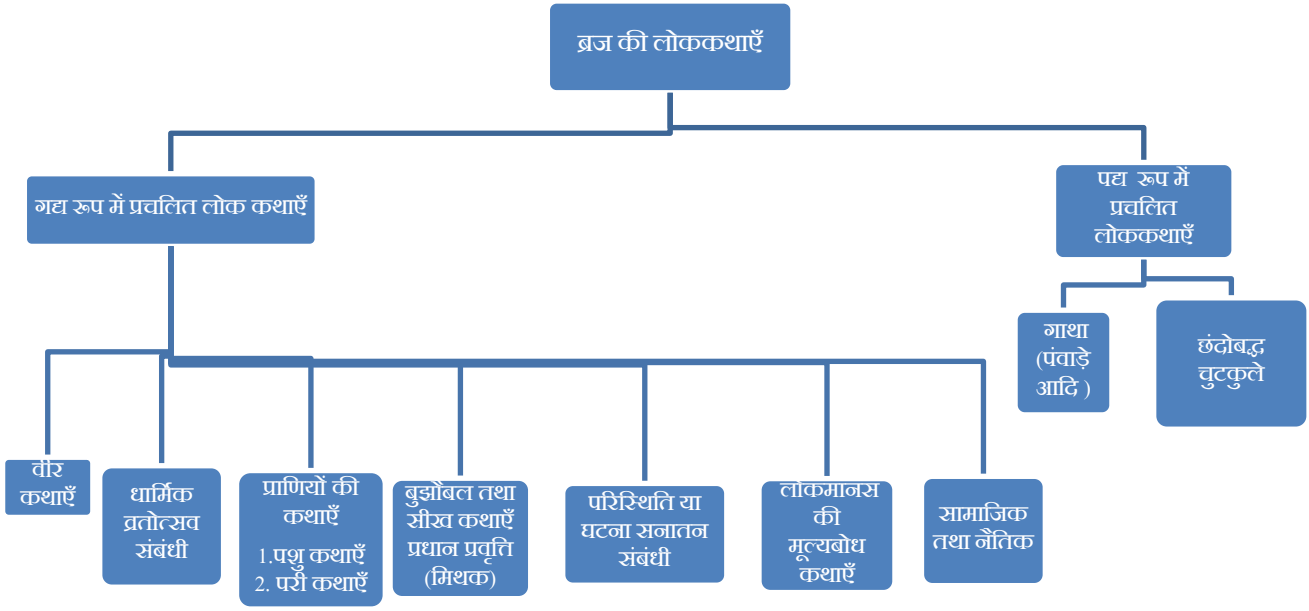

ब्रज लोककथाओं में भगवान श्री कृष्ण के जीवन दर्शन को जन-जन तक प्रेरणा के आधार बनाकर प्रस्तुत किया है, ब्रज लोककथाओं में पद्य एवं गद्य में कथाएं प्राप्त होती है। ये लोककथाएं लोककल्याणकारी उद्देश्य से सुनाई जाती हैं। भारतीय परंपरा में रात्रि के समय कहानी कहने का चलन सदियों पुराना है। घर के बड़े-बुजुर्ग, माता-पिता जब बालक को किस्सागोई के साथ कथा कहता है तब वह लोककथाओं के माध्यम से बालक में संस्कार और दुनियाबी ज्ञान का संचार होता है। ब्रज लोककथाओं में "पशु-पक्षियों की तथा पंचतंत्रीय: ये दो प्रकार की होती है एक सामीग्राय जिनसे कोई न कोई शिक्षा निकलती है; दूसरी वे जिनसे कोई शिक्षा नहीं निकलती। परी की

कहानी के कई वर्ग हो सकते है: 1 – वे जो यथार्थ में परियों से, अप्सराओं से, दिव्य कन्याओं से, विद्याधारियों से संबन्धित हैं : जैसे 'वेजान नगर' की कहानी। वेजान नगर की रानी एक अप्सरा थी जिसे तंबोलों के लड़के ने बड़े उद्योग से प्राप्त किया था। दूसरी वे जिनमें दाने (दानव) रहते है। तीसरी वे जिनमें डाहिनें आती हैं। जादू-चमत्कारों की कहानियाँ भी इसी के अंतर्गत होंगी। विक्रम या पराक्रम की कहानी में किसी वीर नायक का चरित्र दिखाया गया है। इसके भी दो प्रकार हो सकते हैं : एक इतिहास-पुरुषाश्रित (अवदान), दूसरा अनैतिहासिक पुरुषाश्रित। ऐतिहासिक पुरुषाश्रित कहानियों में 'वीर-विक्रमजीत' की कहानियाँ प्रधान मानी जाती हैं।"[42]

बुझौबल कहानियाँ मुख्यत: पहेली या शर्त के रूप में होती है। हल खोजने पर परिकल्पित वस्तु प्राप्त हो जाती है। निरीक्षण कहानियाँ मुख्यत: चुटकुलों के रूप में हास्यास्पद कहानी कही जाती है, साधु-पीरों की कहानियों में अंधविश्वास और चमत्कार की कथाएँ देखने को मिलती हैं। ये साधु बाबा पीर-फकीर किस प्रकार संकट निवारण एवं पुत्र प्राप्ती के लिए योग्य रास्ते दिखाते हैं जिसका उल्लेख कथाओं में मिलता है। पारिवारिक संबंधों की लोककथाएँ भी ब्रज में प्रचलित है जिनमें माता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहन, सास-बहू आदि कहानियां देखने को मिलती हैं। ब्रज की धार्मिक कथाओं में ऋतु संबंधी, व्रत संबंधी, तीज- त्यौहार संबंधी लोककथाएँ उल्लेखनीय है। ब्रज में नागपंचमी, कृष्ण जन्माष्टमी, रक्षाबंधन, पुत्रदा एकादशी, हरितालिका तीज, गणेश चतुर्थी, आदि।

ब्रज में प्रचलित नाग पंचमी की कथा इस प्रकार है- "काऊ ब्राह्मण के सात बेटान की सात बहू हीं। छ: बहू तौ अपने भइयान के संग पीहर चली गई पर सातवीं बहू के कोई भैया नाऔ। या कारन बु पीहर नाँय जाय सकी। बा विचारी नै भौत दुखी हैके धरती कुं धारन करिवे बारे शेषनाग कूं भैया के रूप मै याद कियौ।..... एक दिना अचानक बाके हात ते बु दीयौ घूमते भये नागिन के बच्चान पै गिरि गयौ जाते बिन सबकी पुंछ नेकु-नेकु जर गई।..... कै जो कोई बइयर सामन के सुकल पक्ष की पाँचे कुं हमकूं भैया के रूप माँहि पूजेंगी बाकी हम हमेशा रच्छा करते रहिंगों..... ।"[43]

अर्थात् नागपंचमी के उपलक्ष में ब्रज की लोककथाओं में यह कथा प्रचलित है । एक ब्राह्मण के साअत बेटे थे उनमें छ: की पत्नियाँ अपने भाइयों के साथ मायके जाती हैं, सातवीं बहू का कोई भाई नहीं इसलिए वह शेषनाग को भाई की भांति पूजती है, दु:खी महिला को शेषनाग प्रसन्न होकर ब्राह्मण रूप धारण कर उसको साथ ले गए और अपने असली रूप में उसे फन पर बैठकर नागलोक के दर्शन कराए शेषनाग ने एक दीया भेंट के रूप प्रस्तुत किया और कहा की प्रकाश से दिन की तरहा उजाला होगा। एक दिन वह दीया उसके हाथसे छुट के साँप के बच्चों पर गिर गया और उसकी पूंछ झड़ जाती है, शेषनाग क्रोधित होकर बदला लेने आते हैं किन्तु वह बहू शेषनाग की आकृती की पूजा कर क्षमा याचना करती है यह देख वे प्रसन्न होकर वरदान देते हैं कि कोई भी महिला सावन के शुक्ल पक्ष दिनांक पाँच जो स्त्री भ्राता के रूप में हमारी पूजा करेगी हम सदैव उसकी रक्षा करेंगे।

इसके अलावा ब्रज लोककथाओं में राखी के पावन अवसर की कथा भगवान श्री कृष्ण और द्रौपदी को लेकर कही गई है, एक बेर भगवान श्री कृष्ण के हाथ माँहि चोट लागि गई अरु खून बहवे लागि परौ, बा समै ई देखिकै द्रौपदी नै अपनी धोती कौ छोर फाड़ि के भैया के हाथ माँहि बांध दियौ । याई बंधन कौ ऋषिमुनी कै श्री कृष्ण नै दु:शासन नै जब द्रौपदी की चीर खेंचो तब चीर बढ़ाय के बाकी लज्जा राखी ।

इस लोककथा के आधार पर भगवान श्री कृष्ण का हाथा रक्तरंजित होने पर द्रौपदी ने अपनी साड़ी से चीर फाड़ कर भगवान के हाथ में बांधी थी जिससे ऋषिमुनीयों ने द्रौपदी चीरहरण की कथा को रक्षाबंधन के पर्व से जोड़ी है यहाँ द्रौपदी ने कृष्ण को अपनी लाज की रक्षा का दायितत्व दिया दुहशासन के चीर खेंचने पर भगवान श्री कृष्ण ने चीर बढ़ा कर अपनी बहन की लाज बचाई थी । इसके अतिरिक्त ब्रज लोककथाओं का उल्लेख पाश्चात्य लेखक बर्न ने अपनी पुस्तक हैंड बुक ऑफ फोकलोर (Hand Book of Folklore) में दिया है, "उनके इन कथा रूपों का ऐतिहासिक महत्व है

। कुछ अंश ब्रज की लोककथाओं में भी प्राप्त हुए हैं- सर्प-पुत्र (ज्यों की त्यों ब्रज में प्रचलित है जिसमें माँ पशु रूप में प्राप्त पुत्र की छाल जला देती है), स्वर्ण पुत्र (जाहरपीर या गुरगुग्गा में लीली बछेड़ी) जुड़वा भाई"[44] डॉ. सत्येन्द्र ने अपनी पुस्तक 'ब्रज की लोककहानियाँ' में नारद और भगवान कौ खेल, कर्म लच्छिमी कौ बाद, धर्म की कथा, नारद कौ घमंड दूरि करयौ, करमु और लच्छिमी राजा विक्रमाजीत आदि का उल्लेख किया है।

ब्रज मण्डल में प्रचलित परम्पराओं, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यक्रम के माध्यम से ही मानव मूल्यों, नीति-विचार का विकास हुआ ऐसा कहा जा सकता है। पौराणिक युगीन परम्पराओं का लोकगाथाओं में उल्लेख मिलता है, लोकगाथा की कथा गेयात्मक शैली में होती है, इतिहास में घटित घटनाओं को गा-गाकर कहा जाता है। जिसे लंबे समय तक गाना पड़ता है, लोकगाथाओं में मुख्यत: शौर्य गाथाएँ, प्रेम गाथाएँ अधिक मिलती हैं। "लोकगाथा आख्यानात्मक लोकगीत अथवा पद्यबद्ध लोककथा होती है।"[45] डॉ. सत्येन्द्र ने लोकगाथाओं का विभाजन विषयपरक दृष्टि से किया है- "लोकगाथाएँ चार प्रकार की हो सकती है। १.) विश्व-निर्माण की व्याख्या करनेवाली २.) प्रकृति के इतिहास की विशेषताओं की व्याख्या करनेवाली, ३.) मानवी सभ्यता के मूल की व्याख्या करनेवाली, ४.) समाज तथा धर्म-प्रथाओं के मूल अथवा पूजा के इष्ट के स्वभाव तथा इतिहास की व्याख्या करनेवाली।"[46] ब्रज लोकगाथाओं में ढोला मारू, आल्हा-ऊदल, हीर राँझा, नरसी का भात, बारहमासी मल्हार आदि प्रबंध काव्य प्राप्त हुए हैं। डॉ. सत्येन्द्र ने लोकगाथाओं की संकल्पना कराते हुए लिखा है कि- "ऐसी समस्त गाथाएँ जो यथार्थ ऐतिहासिक बिन्दु पर खड़ी हो गयी हों, अथवा जिनकों किसी समय में ऐतिहासिक प्रतिष्ठा मिल गई हो, उन पर बनी हों, वे लोकगाथाएँ (अवदान) कही जाएंगी। यह अक्षरश: सत्य है कि निम्न तथा अपेक्षाकृत अज्ञान में डूबी जातियों में आज भी दृष्ट प्रकृति मनुष्य का प्रेत, उसकी मृत्यु के उपरांत पूजा जाता है। इसके विषय में बड़ी विलक्षण चमत्कार कथाएँ चल पड़ती हैं। जो मनुष्य अपने शौर्य अथवा किसी मानसिक या शारीरिक शक्ति से अपने

समय के लोगों पर अपनी गहरी छाप लगा देता है, वही निरक्षकजनों में अवदान का विषय बन जाता है।"[47]

लोकगाथाओं को प्रम गाथा, गीत गाथा के नाम से भी जाना जाता है, ब्रज में 'पंवाड़ा' 'साकौ' 'साखौ' आदि नामों से लोकगाथा प्रसिद्ध है। लोकगाथाएँ मुख्यत: आख्यान के रूप में प्राप्त होती है, कथावस्तु और कल्पना तत्त्व के साथ ये ऐतिहासिकता का भी उदघाटन होता है। "डॉ नरेश चंद्र बंसल ने 'ब्रज की लोकगाथाएँ' ग्राठा में ब्रज की लोकगाथाओं का वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है- मंगल गाथाएँ (महादेव कौ ब्याह, सीता को मंगल, रुक्मिणी मंगल), देवी गाथाएँ (अचल कुमरि और पांडव), करुण गाथाएँ (सीता बनवास), पशु गाथाएँ (सुरही), भक्त गाथाएँ (पूरनमल, धांनू भगत, राजा-केवल रानी –मोहनदे, राजा महिपाल, बाबू लीला), धर्म गाथाएँ (सरमन, गोपीचंद, जाहरवीर, सुआ-सेवरों), प्रेम गाथाएँ (दमयंती स्वयंवर, हीर-राँझा, जल्ला पठान, राजा- बारबादल, भूला कौ साखौ, गांगदे पारी चंदना मीरा आदि), वीर गाथाएँ (सत्यावादी हरिश्चन्द्र, सागर की लड़ाई, भीम और सोख्ता कौ ब्याह, कीचक बध, सीड़ा की धन्नई, दुर्योधन बध, थुंदाई कौ साकौ, पौपिया बेटी कौ गौनों, हरदौल, हीरामन की गोठ, चन्द्रावली, अमरसिंह कौ पमरौ, वीर कलैया कौ साकौ आदि।)"[48] लोकगाथाओं की कथा में ऐतिहासिकता के साथ विश्वबंधुत्व की भावना भी है।

- **<u>ब्रज लोकनाट्य एवं लोकसुभाषित</u>**

लोक-नाट्य लोकमानव का अनुरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन है। लोक-नाट्य से अभिप्राय है कि बिना रंगमच एवं बिना किसी पूर्व तैयारी के रमनेवाली भावभियक्ति। लोक-नाट्य यह लोकमानस की प्रेरणाओं तथा कामनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति हैं। डॉ. श्याम परमार ने लोक-नाट्य की परिभाषा के विषय में कहा है- "लोक-नाट्य की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है, लोकजीवन से उसका अंग-अंगी का नाता है। बह्याडंबरों और नागरिक सुसंस्कृत चेष्टाओं के बिना

लोक के मनोंभावों और प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र विकास केवल लोकधर्मी नाट्य शैली में ही संभव है । लोकवार्ता का एक स्वतंत्र अंग होने के कारण लोक जीवन में इन नाटकों का अपना अनोखा आकर्षण है ।"[49] लोकनाट्यों के उद्भव एवं विकास की चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं । मानव जन्म के साथ ही कथा गढ़ने का सूत्रपात हुआ है लोक मानव जिस प्रकार हँसता-रोता है, उत्सव प्रिय ग्रामीण मानव जैसे नाचता झूमता है इसी अनुकरण से अभिनय का कार्य शुरू हुआ होगा संस्कारों के विकास के साथ लोकनाट्यों का भी विकास हुआ । "लोकनाटकों का मंच जन-जीवन के बीच खुला क्षेत्र है । गली-गलियारे, नदी-नाले, वन-पर्वत, खेत-खलिहान, द्वार-उपवन, कहीं भी यह स्वत: रच उठता है । इस मंच के लिए कोई साज-सज्जा नहीं करनी पड़ती । किसी प्रकार के प्रसाधनों को जुटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती । चारों ओर की जन-परिधि ही अपने सहज स्वाभाविक रूप में इसका रंगमंच है । ऐसे स्थान पर ही इसका मंच अपने आप उभर उठता है ।"[50] लोकनाट्य और लोक रंगमंच के तीन तत्त्व मुख्य है; नृत्य, संगीत और अभिनय । लोकनाट्य यह मंच के लिए बाधित नहीं हैं खुले मैदान, गाँव की चौपाल, मंदिर का चबूतरा आदि स्थलों रचा जा सकता है । लोकनाट्यों में संगीत और गायन के महत्व के विषय में डॉ. सत्येन्द्र का कथन है- "लोकरंगमंच का नाट्य संगीतात्मक होता है गेयता की इसमें प्रधानता रहती है । इस गेयता का रूप शास्त्रीय नहीं होता । यह सहज लोकसंगीत के तत्त्वों से युक्त होते हैं ।"[51] लोकनाट्य को विविध विद्वानों ने विभाजित किया है डॉ. श्याम परमार ने स्थूल दो भागों में विभक्त किया है । 1. सामयिक लघु प्रहसन 2. मध्यरात्रि में आरंभ होकर प्रात: काल तक अभिनेय गीति-नाट्य ।"[52]

डॉ. सत्येन्द्र के लोकनाट्य को चार प्रमुख प्रकार माने हैं-

1. **नृत्य प्रधान**

'आईने अकबरी' के जिन कीर्तनियों का उल्लेख हुआ है वे आज कल 'रास' के रूप में मिलते है। रास में रासानाट्य की प्रधानता है, पात्र या अभिनेता गाते नहीं, गाने का कार्य प्राय: साथ ही संयोजक मंडली करती है।

2. **नाट्य-हास्य प्रधान**

भांड व्युत्पन्नमती वाले पेशेवर नाट्य- कर्ताओं का वंशगत व्यवसाय है । इनमें हास्य-व्यंग्य की मुख्यता होती है।

3. **संगीत प्रधान कथाबद्ध**

इन नाटकों में संगीत संवादों की प्रधानता होती है तथा कथाबद्ध होते है, नौटंकी, माँच, भगत इसी के प्रकार हैं।

4. **नाट्य-वार्ता प्रधान**

नाटक के साथ वाद-संवाद के साथ बातचीत रहती है, संगीत का उपयोग यदाकदा होता है।"[53]

डॉ. कुंदनलाल उप्रेती के अनुसंधान के आधार पर लोकनाट्य का विभाजन

धार्मिक, ऐतिहासिक तथा किंवदंतियों पर आधारित (रामलीला, हरिश्चंद्र आदि), नृत्य प्रधान (रासलीला आदि), संगीत प्रधान (भगत, माँच, नौटंकी आदि), हास्य प्रधान (भाँड आदि), नाट्य वार्ता प्रधान।"[54]

ब्रज में मुख्यत: रास लीला, राम लीला, स्वांग, नकल, भगत या नौटंकी, संगीत,स्वांग, खोरीया और कायिक आदि लोकनाट्य प्राप्त होते है। रास लोकनाट्य का उल्लेख डॉ. कुंदनलाल

उप्रेती इस प्रकार किया है -"ब्रज की जनता सरल, आडम्बरहीन रंगमंच रास है । नृत्य, गीत, वाद्यसंगीत का अपूर्व समावेश इसमें होता है। ब्रज के विविध लोकजीवन की सुंदर अभिव्यक्ति रास में होती है। भगवान कृष्ण गोपियों के साथ एक मण्डल में नृत्य करना रास का प्रधान अभिगम है। अनेक नर्तकियों युक्त नृत्य को ही रास कहा जाता है। इसमें कृष्ण की विविध लीलाओं के साथ-साथ संवाद भी चलते हैं जो गद्य-पद्यमय होते हैं। सूर, नंददास, ललित किशोरी के पद इसमें विशेष रूप से गाए जाते हैं। कवित्त एवं सवैया का भी उपयोग बीच-बीच में किया जाता है।"[55]

भारत की जो लोकनाट्य परंपरा अति प्राचीनकाल से जन-जीवन में प्रवाहमान रहीं है । धार्मिकोत्सव में लोकनाट्य का महत्व देखने को मिलता है। दशहरे के मौके पर समग्र भारत में जगह-जगह रामलीला का आयोजन किया जाता है। ब्रज की नौटंकी विश्वप्रख्यात है भले ही नौटंकी का उद्भव पंजाब में हुआ किन्तु उसका विकास उत्तरप्रदेश में हुआ है । ब्रज में कुछ समय तक नौटंकी भी छिन्न-भिन्न चलती रही लेकिन लालाराम बाबूलाल ने ब्रजकला केंद्र के माध्यम से इसका पुन: गठित किया था । आज जो भी मंडली चल रही है वे ब्रज कला केंद्र की देन है। जिसमें गोपीचंद जी (मुरसान), रामसिंह, नैमसिंह (अकबरपुर), कृष्णाकुमारी, ताराचंद (शिकोहाबाद), अमरनाथ (मथुरा) आदि की मंडलियों को जीवित रखे हुए हैं। आधुनिक युग में नौटंकी का प्रभाव फींका पड़ता जा रहा है। लोकनाट्य परंपरा में कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो इन सभी लोकमंचीय परंपरा में एकता की ज्योत जलाएँ हैं। लोकनाट्य के माध्यम से लोकजीवन के रीति-रिवाज उत्सव का उल्लेख अतिआवश्यक है जिससे आधुनिक युग में वह लुप्त न हो।

- **ब्रज लोकसुभाषित**

लोकक्तियाँ साधारण लोक के अनुभूत ज्ञान का सागर है जो जनजीवन के लिए अखंड संपत्ति है। ब्रज लोकोक्तियों में कहावत, पहेलियाँ, बुझौबल, मुहावरों का अक्षत भंडार है, लोक जनता दैनिक जीवन के व्यवहार में बोलचाल में सैकड़ों मुहावरों, कहावतों का प्रयोग करते हैं।

ब्रज लोकोक्ति के कुछ सुंदर उदाहरण-

- इत्ती गंगा नाय कट गयी है कै सिरकटे फ्लांग जै
- लूली मठा फिरावै, नौ जनी करिहाऔं साधौ
- दुई टकै का भात लायीं, भूड़ पै से गाती आयीं
- जाकी कबऊ न फटी विभाई बु क्या जा नै पीड़ परायी
- ऐसी बलम नै भैंस लयी, बाजी दौनी खटकी रई मांग खाती बाउ से गई
- अड्ठै पौए लड़ाना

ब्रज में पहेलियों को बुझौबल भी कहा जाता है, समूह बनाकर वृत में लोग बैठकर यह खेल-खेलते हैं जिससे बुद्धि का व्यायाम होता है। ब्रज की पहेलियाँ निम्नलिखित हैं-

1. बोलै से बोलै तो नाय मारे से डकराए ; देखौ लोगों जे तमाशा मुर्दा आंटा खाय - **ढ़ोल**

2. सूखे झाँकर अंडे दै - **चरखा**

3. एक पेड़ सल्लौआ, बा पै चील न बैठे कौआ –**धुआँ**

4. सब गाँव सोवै, चंदानियाँ मट्टी ढ़ोवै – **रेलगाड़ी**

5. नौ धरी का पत्ता, चार अंगुल की पीड़,

फल आवै अलग-अलग, पकै संग – **कुम्हार का चाक**

6. लाल-लाल गुटकूँ ; मै हाथ लगाऊँ तुझकूँ

तु काट खाये मुझकूँ- **बेर**

7. हरी साँठ मुर-मुरा सेंटा,

नाव नै बतावै बाका बाप कानैटा- **गन्ना**

8. खरया भत्ता जै, मेंड़ बनती जै – **सुई धागा**

9. इधर से आई जाटनी उधर से आया जाट

दोऊ मिलागै ऐसे चक्की कैसे पाट - **दरवाजा**

10. कटोरे पै कटोरा, बेटा बाप सेऊ गोरा – **नारियल का गोला**

ब्रज में शिशुगीत या बालगीत भी खेल-खेल में बच्चे गाते हैं, मनोरंजन के साथ गया वर्धक बाते भी करते हैं, माता अपने शिशु को निद्रा देवी की गोद में देने हेतु बालक को लोरियाँ सुनाती है, बड़े होते-होते बालक विभिन्न गीत खेलते-खेलते सिख जाते हैं। लोकक्तियाँ, बुझौबल, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, मुहावरे, कहावत, पालने के गीत, लोरियाँ, खेल गीत, आदि को प्रकीर्ण लोकसाहित्य के अंतर्गत रखा जाता है।

* ब्रज के कुछ बाल गीत एवं लोरी इस प्रकार है-

एक वृत बनाकर सब मूठी बनाकर आगे हाथ रख देते हैं। एक बच्चा लकड़ी हाथ मे लेकर उस मूठी मे लकड़ी डाल कर कहता है,,…

“चूँन मूंदरियाँ चूँन ही साय

जो पावै लै-लै भज जाये”...

जाये जिस भी बच्चे के हाथ में आकर लकड़ी रुकती है उसे देकर भगा देता है। फिर निष्काषित बालक को थोड़े दूर से कंधों पे बैठकर आना होता है, कुछ बच्चे नाम लेकर भी यह खेल खेलते हैं। ब्रज का एक और बालगीत बच्चों में से एक बच्चा वृद्ध की नकल कर कमर पर एक हाथ रखकर दूसरे हाथ में लकड़ी से ज़मीन में कुछ ढूँढता है, तब बालक प्रश्नोत्तर करते हैं।

“डुकरिया- डुकरिया का ढूंढति है ?

“सुई”!!

सुई कौ का करेगी ?

थैला सिऊंगी!!

थैले कौ का करेगी?

रुपया धरूँगी!

रुपयो कौ का करेगी?

भैंस लाऊँगी !

भैंसिया कौ का करेगी?

दूध्धू पियूँगी!

दूध के नाव सै मूत पी लै.....

गीत खत्म होते ही बच्चे भागते हैं और बुढ़िया बना बच्चा अन्य बच्चों को पकड़ता है।

ब्रज में युक्त लोकोक्तियों को देहाती भाषा में सटे भी कहते हैं। इन सटों के नियोजन से गीतों का निर्माण होता है।

बालगीत में बच्चे अक्सर युगल भी बनते हैं और ऐसे गीत गाते है।

“घनर-घनर घंटारियाँ बजाइयौ

दोय नगरी दूय गांवों बसैयौ!

बस गए चौरा बस गयै मोरा

मोरा कै भां खेती भई!

हाय!! तमंचा मोटी भई!

मोठ-मोठ के चने भुंजाएँ

वे पहुंचाए दिल्ली

दिल्ली मेरा काला कोट

आय पारी चूल्हे की ओट

चूल्हा मांगे सौ-सौ लोट

एक लोट खोंटा

धेय सारी में सोंटा

सोंटा गया टूट डूकरट्टों गई रूंठ

दही दूध बहुतैरा

खाने का मोह टेढ़ा

हलक में डारि लठिया

नाव धरा सिरकटिया!!

ब्रज बालगीत का कासगंज क्षेत्र का प्रसिद्ध गीत :

चक्की तलै जीरा बोया

हाँ सहेली जीरा बोया!

जीरा मै दोय कल्ला फूटा

हाँ सहेली कल्ला फूटा।

कल्ला मैंने गय्यै चराया

गैय्या नै मौय दुद्धू दीना।

हाँ सहेली.....

दुद्धु की मैंने खीर पकाई

खीर मैंने भैये चटाई

हाँ सहेली.....

भैया नै मोय रुप्या दीना

रुप्या की मैने ओढ़निया लई

हाँ सहेली.....

ओढ़निया ओढ़ मै बाग मे गई।

भारतीय प्राचीन परंपरा के अनुसार अक्सर माताएं रात्रि समय लोरियाँ गातीं हैं। जिसमें लल्ला-लल्ला लोरी ; दूध की कटोरी ; दूध में बताशा; लल्ला कारै तमाशा और चन्दा मामा दूर कै ; पुए पकाएँ बूर कै ; आप थाली में मुन्ने को दै प्याली में आदि सुनते चलें आएं हैं।

ब्रज की एक लोरी का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत है ;

लल्ला-लल्ला लाड़ का!!

परिया पहने पाड़ का

बाजू-बंद रेती कै

काका-नाना बरेली कै...!

आदि रोचक बालगीत सुनने को मिलते हैं।

- **<u>ब्रज लोकगीत एवं वर्गीकरण</u>**

लोकसाहित्य लोकधर्मी परंपरा के वहन में लोक मानव की साधारण अबोध अभिव्यक्ति है। जन साधारण को अपने लोकनुरंजन की प्रेरणा संभवत: संस्कृति से प्राप्त है। यह लोकमनुष्य की प्रवृत्तियों का कोश लोक साहित्य है, इस विषय लोकसाहित्य के उपासक डॉ. सत्येन्द्र का कथन है- "लोकसाहित्य का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं होता जितना उन परम्पराओं की दृष्टि से होता हैं जो न विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं। इस साहित्य को आदि मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोष कह सकते हैं।"[56] कृष्णानंद गुप्त के अनुसार "ग्रामगीत छोटे होते हैं और रचनाकाल की दृष्टि से आधुनिक भी हो सकते हैं।"[57] लोकगीतों को परिभाषित करने का कार्य

विभिन्न विद्वतजनों ने किया है। श्याम परमार के अनुसार- "लोकगीत लोकसाहित्य का ही गीत-प्रधान अंग है जिसका उद्भव नगर और ग्राम के संयुक्त साधारण के मध्य होता है। वही वर्ग 'लोक' है। किन्हीं अंशों में लोकोन्मुखी प्रवृत्ति का संस्कृतजन भी इस 'लोक' का अंश बन जाता है। अत: ग्रामगीत इस दृष्टि से लोकगीत के पूरक ही है।"[58] लोकगीत साधारण जन के मुख से अनायास ही निकल जाते हैं जब भी लोक मानव दु:ख-सुख, तीज-त्यौहार पर स्वानुभूति से निकले संगीतमय स्वर ही लोकगीत है। "वास्तव में गीत खुले आकाश के नीचे, खुली धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक अंकुरित हुए और पले हैं और यही धरती इनकी सर्जक माँ है, जिसके वक्षस्थल का दुध पीकर ये पुष्ट हुए हैं। ये किसी से उधार नहीं लिए गए , कहीं से हवा में बहकर नहीं आए, किससी व्यक्ति विशेष ने इमारत की तरह इन्हें गढ़ा नहीं है। सभी ने सुना, सभी ने गाया और अपनी आनेवाली संतति को इन्हें सौंप दिया ! लोकगीत हृदय के खेत में उगते हैं। सुख के गीत उमंग के ज़ोर से जन्म लेते हैं और दु:ख के गीत तो खौलते लहू से पनपते हैं और आंसुओं के स्वामी बन जाते हैं।"[59] "ब्रज के लोकगीतों को हम उनके उद्देश्यों के आधार पर दो भागों में बाँट सकते हैं एक अनुष्ठान आचार संबंधी, दूसरे मनोरंजन संबंधी।"[60] यहाँ आचार्य सत्येंद्र ने लोकगीतों को दो भागों में विभाजित किया है, लोकसाहित्यकार कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों का वर्गीकरण इस तरह किया है-

- संस्कारों की दृष्टि से
- रसानुभूति की प्रणाली से
- ऋतुओं और व्रतों के क्रम से
- विभिन्न जातियों के प्रकार से
- क्रिया-गीत की दृष्टि से"[61]

इसके अलावा राजस्थानी लोकसाहित्य के अध्येता पंडित सूर्यकरण पारीक ने अपने ग्रंथ राजस्थानी लोकगीतों में विषयवस्तु की तथ्यपरकता के अनुरूप लोकगीतों को उन्तीस भागों में विभक्त किया है।

1. देवी- देवताओं और पितरों के गीत,
2. ऋतुओं के गीत,
3. तीर्थों के गीत
4. व्रत-उपवास और त्यौहारों के गीत,
5. संस्कारों के गीत,
6. विवाह के गीत,
7. भाई-बहन के प्रेम के गीत,
8. साली-सालेल्यां (सरहज) के गीत,
9. पति-पत्नी के प्रेम के गीत,
10. पनिहारियों के गीत,
11. प्रेम के गीत,
12. चक्की पीसते समय के गीत,
13. बालिकाओं के गीत,
14. चरखे के गीत,
15. प्रभाती गीत,
16. हरजस-राधाकृष्ण के प्रेम के गीत,
17. धमालें-होली के अवसर पर पुरूषों द्वारा गेय गीत,
18. देश-प्रेम के गीत,
19. राजकीय गीत
20. राज दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत,
21. जम्में के गीत – वीरों, सिद्ध पुरुषों, महात्माओं की स्मृति में रखे गए जागरण को 'जम्मा' कहते हैं।
22. सिद्ध पुरुषों के गीत,

23. क - वीरों के गीत, ख - ऐतिहासिक गीत,

24.क - गवालों के गीत, ख - हास्यरस गीत,

25. पशु-पक्षी संबंधी गीत,

26. शांत रस गीत,

27. गांवों के गीत (ग्रामगीत)

28. नाट्यगीत

29. विविध"[62]

लोकसाहित्यकारों के लोकगीत विभाजन को आधार मानकर ब्रज लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

- संस्कार संबंधी गीत
- श्रम संबंधी गीत (चक्की और चरखे के गीत, कृषि के गीत)
- धार्मिकोत्सव के गीत
- ऋतु संबंधी गीत
- खेती एवं मेले के गीत
- जाति विशेषक गीत
- व्रत एवं देवी-देवताओं के गीत
- बालगीत, लोरियाँ
- विविध

ब्रज लोकगीतों में उपयुक्त सभी प्रकारों के गीतों का भंडार है। ब्रज लोकगीतों की विविधता और बहुलता का प्रमाण बहुत अधिक है। ब्रज लोकगीतों में धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गीतों का सागर है, जिनके अंतर्गत प्रकृति पूजा के गीत, कृषि संबंधित गीत,आदि लोकगीतों में व्यापकता है।

o संस्कार संबंधी ब्रज लोकगीत

ब्रज लोकगीतों में संस्कार संबंधी गीतों में जन्म के गीत होते हैं जिसमें गर्भसंस्कार से लेकर प्रसव तक के समयान्तराल के गीत हैं। पुंसवन, छठी के गीत,मुंडन के गीत, यज्ञोपवीत गीत, आदि गीत गाए जाते हैं। गर्भाधान से प्रसव तक की यात्रा को महिंलाएँ सोहर या जच्चागीत, जचकीरी भी कहा जाता है। भारतीय संस्कृति में गर्भाधान के प्रथम मास से संस्कार शुरू हो जाते हैं, मुख्यत: सातवें मास में गोदभराई की रस्म की जाती है। शिशु के जन्म के साथ ही महिलाएं गीत गाने के अवसर ढूंढती रहती है। पति-पत्नी को चौक पर बिठाया जाता है और गीत गाये जाते हैं। बालक के अंश आने के बाद नौ मास की यात्रा का वर्णन प्रस्तुत गीत में किया है -

"पहिलौ महिना जब लागिए,
बाकौ फूलु गह्यौ फलु लागिए'
ए बाई दूजौ महिना जब लागिए,
राजे तीजो महिना जब लागिए,
बाकौ खीर खांड मन आइए
******
ए बाइ पंचयौ महिना जब लागिए,
ए बाकू कोल के आम मंगाइए"[63]

प्रसव के बाद संस्कारों का कार्यक्रम शुरू हो जाता है, जिसमें नेग प्रसंग भी होते है पुत्र प्राप्ति पर नन्द को नेग दिया जाता है, छठी के अवसर पर जच्चा-बच्चा को स्नान कराया जाता है और छठी की

पूजा होती है इस अवसर पर बुआ (नंद) बच्चे के काजल लगाकर नामकरण करती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले कुछ गीत इस प्रकार हैं-

छठी पूजन गीत में प्राय:रिश्तेदारों की गिनती सी लगती है छठी के गीत में एक-एक पंक्ति में नाना-नानी,मौसी, ताई, चाची, माई, बुआ, फूफा आदि आते है पालना झूलते हैं और झुनझुना देते हैं।

छठी पूजन्तर बहू आई सीता,

छठी पूजन्तर बहू आई उर्मिला,

छठी पूजन्तर कहा फल मांगे,

अनु मांगे धनु मांगे, अपने पुरखन कौ राज मांगे।

बारौ झडूला गोद मांगै।"[64]

यज्ञोपवीत एवं मुंडन पुत्र जन्म पश्चात सबसे महत्वपूर्ण संस्कार हैं, जिसके तहत ग्रामीण समग्र समुदाय का भोजन समारोह का आयोजन करते हैं। इस आयोजन में बाजे गाजे वालों को नेग देते हैं , भांड़, किन्नर आदि को नेग दिया जाता है। इसके अतिरिक्त छोछक, पालना के गीत भी प्राप्त हैं-

चंदा कहाँ से लाऊं मेरा सामलियाँ।

क्या लल्ला खेलै दादा की गोदी।

क्या लल्ला खेलै दादी की गोदी,

क्या दादा कै पास मेरा सामलियाँ।

ख़िलत-खिलत लल्ला दूर मति जाइयौ,

सर कै झडुलै बाल मेरा सामलिया।

भाभी-नन्द का नेग की सौगात पर एक गीत यहाँ प्रस्तुत है-

मांगे मांगे ननद रानी कंगना लाला के जनै,

हाथी पै बैठे ससुर समझावै,

दैदो दैदो बहुरानी कंगना लाला के जनै,

घोड़े पै बैठे जैठ समझावै,

दैदो दैदो छोटी बहू कंगना लाला के जनै,

चौके में बैठे देवर समझावै,

दैदो दैदो भऊजी कंगना लाला के जनै,

सेज पै लेटे साजन समझावै,

दैदो दैदो (बालक नाम) की अम्मी कंगना लाला के जनै,

तब ननंद प्रसन्न होकर आशीर्वचन देकर कहती है-

भैया मेरौ जीवै, भतीजा मेरौ जीवै

जुग-जुग जीवै तेरौ ललना,

भाभी बार-बार आऊँ तोहरे अंगना लाला के भए,

कंगना उतार हाथ भरलीना ।

लाला के भए।

लोकगायक – (जफर)

जच्चा गीतों में पारिवारिक संबंधों का उल्लेख मिलता है, या यूं कहे के रिश्तों और रिश्तेदारों के नाम ले लेकर गीत की योजना बनाई गयी है।

रेशमी सलवार कुर्ता का जाली का,

अरे रे रूप सहा न जाए जच्चा प्यारी का,

अरे रे जब जब सासुल आवै मेरे दिल में उठे रे फुलझरियाँ,

अरे रे जब जब नंदूल आवै मेरे दिल में उठे रे फुलझरियाँ,

अरे रे जब जब जिठानी आवै मेरे दिल में उठे रे फुलझरियाँ...।

लोकगायक- (मेहरुन्निसा और जैतुन अब्बासी)

ब्रज में संस्कार गीतों में प्रत्येक संस्कार संबंधी सुंदर गीत मिलते हैं, ब्रज के लोकोत्सव की विहंगम झांकी लोकगीतों में निहित है। मानव जीवन मुख्य तीन संस्कारों के वृत्त में जीवन व्यतीत करता है। जन्म, विवाह, मृत्यु। संस्कार का महत्व लोकमानव को जन्म से पहले ही गर्भ में सिखाया जाता है यह कहन अनुचित न होगा। जनम से पहले और मृत्यु के बाद भी मानव संस्कृति के लोकधर्मी चक्र में वास करता है।

o विवाह संबंधी ब्रज लोकगीत

लोक मानव उत्सव प्रिय होता है, जन्म के संस्कारों के बाद विवाह जीवन का अहम संस्कार माना जात है। विवाह के अंतर्गत धार्मिक अनुष्ठान के अनुरूप कार्यक्रम सम्पन्न किए जाते हैं। "विवाह संस्कार में कुछ आचार वैदिक अथवा शास्त्रोंक्त प्रणाली से पुरोहित और पंडित द्वारा कराये जाते हैं और लौकिक आचारों की संख्या वैदिक आचारों से कहीं अधिक होती है। वैदिक आचार को धुरी माना जा सकता है, उस धुरी के चारों ओर लोकाचारों का घना ताना-बाना पूरा हुआ है। लोकाचारों में ही लोकवार्ता और लोकगीत के दर्शन होते हैं।"[65] ब्रज के विवाह संस्कारों में बीजरोपन

'पक्की' से होता है, पश्चात सगाई की रस्म होती है। 'पक्की' में वर पक्ष कन्या के हाथ में शगुन रखकर बात पक्की करते हैं। जिसके बाद कन्यापक्ष वरपक्ष के सभी नाते-रिश्तेदारों को भेंट देता है जिसे 'मिलनी' भी कहते हैं। भोजन के साथ आदर सत्कार करते हैं। विवाह के संस्कारों में तेल चढ़ाई, हल्दी-महंदी, भात, मांडवा, निकरैसी, फेरे(भामर), निकाह, विदाई आदि संस्कार होते हैं जिनमें आमजन समुदाय गीत गाते हैं और इस क्षण को स्मरणीय बनाते हैं। कन्या पक्ष से 'पीली चिट्ठी' आती है जिसके बाद मण्डल कार्यों का आरंभ होता है। विवाह संस्कारों में विविध तैयारियों का वर्णन मिलता है। यह वैवाहिक कार्यक्रम में प्रथम कड़ी लगुन या लग्न पत्रिका है।

जोई सगुन दादी भुआ कूं भए,

सोई लड़िलड़ी हूँ होइ।"[66]

लड़के के विवाह पर नाई न्यौता के साथ चावल ले जाता है, और लड़की के विवाह में सुपारी इस तरहा ब्रज में आमंत्रण दिया जाता है। ब्रज में विवाह के संस्कार को हर्षोल्लास से किया जाता है, ब्रज में भात न्यौतने जाते हैं। विवाह पर मामा 'भात' लाते हैं इस भात में समग्र परिवार हेतु आभूषण, वस्त्र, भेंट आदि दिया जाता है। सभी परिवार जन की महिलाओं को एकत्रित कर भात गीत गाती है। भात गीत के सुंदर उदाहरण इस प्रकार है,

मेरे लछिमन वीर भात घनेरा लाइयौ,

मेरे माथे को टीका लाइयौ, नाक को बेसर लाइयौ!

वा पै रतन जड़इयौ मैया जाये,

मेरे लछिमन वीर भात घनेरा लाइयौ!

मेरे भईयौ गले कौ लाइयौ जंजीर,

मेरे गले को हरवा लाइयौ, चुकी रत्न जड़इयौ!

मेरे भईयौ गले कौ लाइयौ जंजीर,

मेरे लछिमन वीर भात घनेरा लाइयौ!

(फिरदौस साबिर खान)

भातगीतों में बहनें अपने मायके की लाज और ससुराल में अपने सम्मान के लिए चिंतित दिखी हैं, स्त्रियाँ आभूषण प्रिय होती हैं यही आभुषण प्रेम गीतों में स्पष्ट रूप से दिखता है। वैवाहिक कार्यक्रम परिवार जन एवं स्नेही व्यक्तियों के सहयोग भी देखने को मिलते हैं। सभी विवाह की तैयारियों में हाथ बटातें हैं। ब्रज में विवाह महोत्सव की भांति मनाते हैं। विवाह से कुछ दिन पहले दुल्हा-दुल्हन की रंगत निखरने हेतु हल्दी उबटन लगाते हैं यह रस्म समग्र भारत में समान रूप से मनाई जाती है।

इस अवसर पर हल्दी गीत –

"बरना पै हरदी चढ़ाऔ री, सब आओ परोसिनी।

हरदी-केसर रोरी मंगाओ,

थारी में धरि कै लाओ री,सब आओ.....।"[67]

ब्रज के महंदी गीत का उदाहरण –

बन्ने तू लगायलै, नौ से तू लगायलै,

मंहदी ऊ आयौ, उबटन ऊ आयौ,

नाई को बुलायलै, मामा को बुलायलै,

महंदी आई।

बन्ने तू लगायलै, नौ से तू लगायलै,

महंदी ऊ आई, कंगना ऊ आया,

भाभी कौ बुलायलै, बहिन कौ बुलायलै,

(फिरदौस साबिर खान)

बन्ने-बन्नी के गीत शादी विवाह के अवसर पर हर रस्म के अंतर्गत गाये जाते हैं। सेहरा बंदी, और बारात निकरैसी के गीत का भण्डार है।

फुला बिनन जैयौ मेरे लाल बन्ने

बन्ने अच्छै-अच्छै फूलवा बीन के

कपड़े रंग लैइयौ मेरे लाल बन्ने...

अच्छै- अच्छै कपड़े पहिर कै ससुराल कौ जैयौ मेरे लाल बन्ने...

सासुल पूंछै जो बातियाँ शरमाएँ बतलैयौ मेरे लाल बन्ने...

फुला बिनन जैयौ मेरे लाल बन्ने

बन्ने अच्छै-अच्छै फूलवा बीन के

कपड़े रंग लैइयौ मेरे लाल बन्ने...

अच्छै- अच्छै कपड़े पहिर कै ससुराल कौ जैयौ मेरे लाल बन्ने...

साली-सरैज पूंछै जो बातियाँ हँस-हँस बतलैयौ मेरे लाल बन्ने...

फुला बिनन जैयौ मेरे लाल बन्ने

नौसे अच्छै-अच्छै फूलवा बीन के

कपड़े रंग लैइयौ मेरे लाल बन्ने...

अच्छै- अच्छै कपड़े पहिर कै ससुराल कौ जैयौ मेरे लाल बन्ने...

साली जौ पूंछै जो बातियाँ लैके भज अइयौ मेरे लाल बन्ने...

फुला बिनन जैयौ मेरे लाल बन्ने....।

(फिरदौस साबिर खान)

ब्रज क्षेत्र में 'निकरैसी' अर्थात् बारात के निकालने का अवसर इस मौके पर वर पक्ष की महिलाएं गीत गाती हैं। दुल्हे के घोड़ी चढ़ने पर माँ का हृदय भर आता है अपनी आँखों से अपने बेटे को संजता देख वह भावविभोर हो जाती है।

ठाड़ौ रह दूल्हा, तेरी मईल बोलै,

खोलौ खाई देऊ बधाई

दूल्हा ऐ देखन आई लुगाई।

धनियाँ उम्हायौ दूल्हा बागान मोरे,

हासुली मेरी चाल सुहाई,

लोग कहै दुल्ह कारौई कारौ

माइ कहै मेरी जगत उजारौ।"[68]

कुआँ-पूजने के गीत, भाँमार के गीत, कन्यादान के गीत,गारी गीत आदि वैवाहिक संस्कारों के साथ साथ गाये जाते हैं, कन्या पक्ष बारात का स्वागत धूमधाम से करता है, और जलपान आदि की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था करने का प्रयास करता है।

बारात के भोजन ग्रहण करते समय ब्रज में औरतें गारी गीत गाती है,

"दारी समधिन न्हाइवे कूं चाली,

संग लिये गिरधारी.... रंग बरसैगौ

हाँ हाँ राम रंग बरसैगौ..... ।

आप हँसौगै सब ग्वाल हंसिंगे अरु हसेंगी ब्रजनारी

रंग बरसैगौ, हाँ हाँ राम रंग बरसैगौ ।"[69]

विवाह के संस्कार में विदाई का वक़्त शोक का होता है, माँ-बाप, भाई-बहन परिवार के सदस्य और स्नेही जन विदाई के रुदन को प्रकट करते हैं, विदाई गीत मर्मस्पर्शी करूण रस प्रधान गीत होते हैं जिन्हें सुनकर ऐसा कोई नहीं जिसके आँखों में नमी न आए। विदाई गीत का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत गीत में हुआ है-

काहे कूं ब्याही विदेस रे सुन बाबुल मोरे

हमतौ बाबुल तेरे अंगना की चिड़िया।

चुग्गा चुगत उड़ जाये रे सुन बाबुल मोर,

हम तौ बाबुल तेरे अंगना की गैया बछिया

जितै हाँको हाँक जाय रे सुन बाबुल मोर....।

(फिरदौस साबिर खान)

ब्रज में विदाई गीतों का एक उदाहरण

“औ रे कौ रे गुड़िया ओ छोड़ी।

रोमन छोड़ी सहेलीरी।।

अपने बबुल को देस छोड़यौ।

अपने ससुर के साथ चली॥

लेउ बाबुल घर आपनो ।

छोटे बिरन मेरे रथ कौऊ डंडा॥”[70]

ब्रज में खोरीया नृत्य बारात जाने के बाद वरपक्ष की महिलाएं खेलती हैं, लांगुरिया गीत यह हास्य-व्यंग्य गीत होते हैं।

तसला पीतल का गढ़वाय दै,

टना-टन बोले लांगुरिया।

झां धरा मैंरौ पीसना

भैंयै ससुर की खाट।

निबटत आवै मेरा पीसना।

सिरकत आवै खाट।

तसला पीतल का गढ़वाय दै.... लांगुरिया

झां धरा मैंरौ पीसना।

भैंयै जेठ न की खाट।

निबटत आवै मैंरौ पीसना।

सिरकत आवै खाट।

तसला पीतल का गढ़वाय दै....

टना-टन बोले लांगुरिया।

(फिरदौस साबिर खान)

लांगुरिया के गीत मुख्यत: नृत्य गीत होते हैं, खोरीया नृत्य में महिलाएं पुरुष बनकर हास्य- व्यंग्य करती हैं और नाचती हैं।

मृत्यु गीत

मानव का अंतिम संस्कार मृत्यु है, इस अवसर पर परिवार में शोक और विषाद का वातवरण होता है। मृत्यु के बाद के संस्कार समाज में अनिवार्य रूप से किए जाते हैं ऐसे दु:खद समय में प्राय: गीत नहीं गाये जाते हैं, कहीं कहीं गीत गाये जाते हैं। "ब्रज में ही चतुर्वेदियों में मृत्यु के अवसर पर जो स्त्रियों का रुदन होता है, वह संगीत के साथ होता है, वह संगीत-गति के साथ होता है, संगीत-गति का अभिप्राय किसी वाद्य-यंत्र के साथ होने का नहीं है। इस रुदन में भी एक लय मिलती है, और आभिप्राय: भी होता है। इसमें प्राय : मृत्त पुरुष के विविध प्रिय पदार्थों का नाम ले लेकर शोक प्रकट किया जाता है।"[71]

"काए के कारन जौ वए, और काहे के हरे हरे बाँस,

हरि रे किसन कैसे तिरयऔ,

लाला धरम के कारन जौ वए, मरण के काजे हरे हरे बाँस,

हरि रे किसन कैसे तिरयऔ,

बेटीन व्याही आपनी, मढ़हे न लीयौ कन्यादान,

हरि रे किसन कैसे तिरयऔ,"[72]

ब्रज के लोकोत्सव की धूम समग्र भारत में प्रख्यात है ऋतुओं के अनुसाए ब्रज में उत्सव मनाए जाते हैं वर्षा ऋतु में झुलोत्सव, हरियाली तीज, नाग पंचमी,रक्षाबंधन, गणेश चौठ, जन्माआंठे, आदि प्रमुख रूप से मनाए जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में अक्षय तृतीय, वैशाख, जलविहार, गंगा दशहरा, वटपूजन, भडरिया वौमी, व्यास पूजा, देवसायनी ग्यारस आदि। त्यौहार मनाये जाते हैं, वसंत ऋतु में नवरात्र,

दशहरा, रामलीला, वसंतोत्सव, होली आदि। लोकोत्सव पर ब्रज में भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत गाये जाते हैं। ऋतु संबंधी, जाति, श्रम गीत एवं विशिष्ट त्यौहारों पर गाये जाने वाले ब्रज गीत के उदाहरण निम्नानुसार हैं।

सावन के माह में रिमझिम फुहार के उत्साह में झूला-झूलती ब्रजनारी गाती है –

"अरी भैंना, घटा तौ उठी है घनघोर, सामन में चमकै बीजुरी जी।
कारे कजरारे री बदरा झुकि रहे, अरी भैंना उमड़ि-धूमड़ि बहु,
झूला-झूलती री भैंना उर लगै अरी भैंना पिया गए परदेस"[73]

फागुन में विविध धार्मिकोत्सव होते हैं। ब्रज में होली का पर्व विशेष रूप से मानया जाता है, होली का पखवाड़ा मौज-मस्ती होती है ब्रज का होली गीत-

"आज विरज में होरी रे रसिया, होरी रे रसिया वर जोरी रे
कौन के हाथ कनक पिचकारी
कौन के हाथ कमौरी रे रसिया
आज विरज में...
कृष्ण के हाथ कनक पिचकारी।
राधा के हाथ कमोरी रे रसिया।
उड़त गुलाल लाल भये बादर,
केसर रंग में बोरी रे रसिया।
बाजत ताल मृदंग झांझढप और मंजीरन जोरी रे रसिया।"[74]

ब्रज लोकगीतों में विभिन्न विषय पर गीतों का सागर है, ब्रज की जनता अपने सुख-दु:ख, हास-परिहास, पर्व, पारिवारिक संबंधों का महत्त्व आदि स्वानुभूति के साथ गा उठे तो लोकगीत बन जाता है, कथा गढ़ने पर आ जाये तो लोक कथा का रूप धारण कर लिया। लोकसाहित्य युगों-युगों से आमजन के कंठ में विद्यमान है।

➢ निष्कर्ष

लोकमानव का अलिखित साहित्य ग्राम साहित्य ही लोकसाहित्य है। मानव को वाणी के वरदान के साथ ही इश्वर ने ज्ञान के भंडार से मनुष्य को आप्लावित किया, यही ज्ञान की संचित राशि है और ग्रामीण मानव के जीवन का रत्न लोकसाहित्य ही है। लोकमानव अपने दैनिक क्रिया में घटित सुख-दु:ख की अनुभूतियों को जिसप्रकार प्रकट करता है वही लोकसाहित्य है। मुख्यत: लोकगीतों मानवीय संवेदनाओं का पुट होता है। "लोकगीतों में जनजीवन मुखरित है। प्रात: होते ही चक्की तथा बुहारी के साथ जीवन का जागरण होता है और नारीकंठ से गीत निसृत होने लगते हैं। लोकगीतों एवं जनजीवन का इतना निकट का संबंध है कि लोकगीतों में जनजीवन का प्रतिबिंब उभर आता है। क्या लघु स्फुट-गीत, क्या दीर्घ प्रबंध-गीत जीवन के व्यावहारिक पक्ष का उदघाटन सर्वत्र हुआ है। इस व्यावहारिक पक्ष की पृष्ठभूमि में जो मनोवैज्ञानिकता है उसने जनजीवन को सत्य रूप में निरूपित किया है। जीवन का कोई भी पक्ष क्यों न हो लोकगीत वहाँ उपस्थित है।"[75]

बच्चे खेलते-खेलते अनेक गीतों का निर्माण कर लेते हैं, महिलाएं घर गथ्थु काम करती हैं चक्की पिसती हैं, ओखली चलाती है, तब अनायास ही गीत गाने लगती हैं। इन गीतों के माध्यम से वे अपनी पीड़ा, वेदना को प्रकट करती हैं , पारिवारिक समस्याओं के दुख से कुछ क्षण के लिए आंतर मन को आनंदित कर अपने जी को हल्का कर लेती हैं। "लोक साहित्य में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का बड़ा ही सुंदर सामंजस्य उपलब्ध होता है। लोकगीतों में जहां भाई-बहन, माता-पुत्री और पति-पत्नी के आदर्श चरित्र का चित्रण किया गया है वहाँ लोक-कवि यथार्थवाद के वर्णन की ओर भी जागरूक दिखाई पड़ता है। ननद-भावज, सास-बहू और पत्नियों के शाश्वतिक विरोध के सम्यक विवेचन करने में उसने कुछ उठा नहीं रखा है। लोकगीतों में सुखी समाज के धन, धान्य, ऐश्वर्य और विभूति के वर्णन के साथ ही साथ कठिन गरीबी, अकाल तथा घोर दरिद्रता का दृश्य भी दिखाई पड़ता है। जो काव्य मानव जीवन के केवल एक पहलू का वर्णन उपस्थित करता है वह सच्चा काव्य नहीं

कहा जा सकता । जिस काव्य में जन-जीवन की आशा-निराशा, सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद आदि सभी भावनाओं का सजीव चित्रण हो वही सच्चा, अमर और लोक-प्रतिनिधित्व काव्य है । इस दृष्टि से लोकसाहित्य को अमर साहित्य कि कोटि में रखा जा सकता है ।"[76] लोकसाहित्य की समूची सत्ता एक पुराना वटवृक्ष है, जो सदियों से अपनी शाखाओं की से नित ज्ञान का प्रसार करता रहता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. रवीद्र भ्रमर; हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्त्व; पृ.3
2. सं कृष्णदेव उपाध्याय .डॉ / राहुल सांकृत्यायन .; हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास 16 भाग)); ब्रज लोक साहित्य; डॉ सत्येंद्र; पृ. 4
3. डॉ. सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ.3
4. डॉ. श्याम परमार; मालवी लोक-साहित्य : एक सर्वेक्षण; पृ.3
5. सम्मेलन पत्रिका; (लोक संस्कृति विशेषांक) वर्ष 2010; पृ. 65
6. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.26
7. आजकल; (लोककथा विशेषांक); सन् 1954; पृ.9
8. डॉ. श्याम परमार; भारतीय लोकसाहित्य; पृ.20
9. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 4
10. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.129
11. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ.74
12. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.36
13. वही; पृ.115
14. उद्धृत- डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 120
15. वही; पृ.115
16. रामनरेश त्रिपाठी; कविता कौमुदी; (भाग- 5); पृ.1-2
17. सूर्य किरण पारीक व नरोत्तम स्वामी; राजस्थान के लोकगीत(पूर्वार्द्ध); प्रस्तावना से; पृ.1-2
18. बाबू गुलाबराय; काव्य के रूप; पृ. 123
19. चन्द्रशेखर भट्ट; हाड़ौती लोकगीत; प्राककथन; ले. डॉ. सत्येंद्र
20. हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका; लोकसंस्कृति विशेषांक; पृ. 250

21. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.27

22. रामनरेश त्रिपाठी; कविता कौमुदी; (भाग- 5); पृ. 45

23. डॉ. श्याम परमार; मालवी लोक-साहित्य : एक सर्वेक्षण; पृ.33

24. उद्धृत- डॉ. श्याम परमार; मालवी लोक-साहित्य : एक सर्वेक्षण; पृ.36

25. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 180

26. डॉ. नारायण दास पुरोहित; हिमांचली लोकरंग; पृ.15

27. उद्धृत- डॉ. शेफाली चतुर्वेदी; ब्रज लोक साहित्य : नव चिंतन; पृ. 160

28. डॉ. श्याम परमार; भारतीय लोक साहित्य; पृ. 173

29. डॉ. सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ. 510

30. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 180

31. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.137-138

32. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 14

33. डॉ. श्याम परमार; भारतीय लोकसाहित्य; पृ.11

34. डॉ हरद्वारीलाल शर्मा; लोकवार्ता विज्ञान; खंड 1; पृ. 313

35. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 356

36. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ.135

37. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 381

38. आजकल; (लोककथा विशेषांक); सन् 1954; पृ. 9

39. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ.74

40. डॉ हरद्वारीलाल शर्मा; लोकवार्ता विज्ञान; खंड 1; पृ. 351

41. डॉ शेफाली चतुर्वेदी; ब्रज लोक साहित्य : नव चिंतन; पृ. 79

42. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ.75

43. श्रीमती चंद्रकला शर्मा; ब्रज के पर्वन की लोककथा; सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; पृ. 270-271

44. डॉ शेफाली चतुर्वेदी; ब्रज लोक साहित्य : नव चिंतन; पृ. 97

45. डॉ. चंद्रभान रावत; ब्रज की लोकगाथाएँ और कथा; पृ.14

46. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ.78

47. डॉ. सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ. 159

48. उद्धृत- डॉ. शेफाली चतुर्वेदी; ब्रज लोक साहित्य : नव चिंतन; पृ. 112-113

49. डॉ. श्याम परमार; लोकधर्मी नाट्य परंपरा; पृ.7

50. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ.173

51. डॉ. सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ. 509

52. डॉ. श्याम परमार; लोकधर्मी नाट्य परंपरा; पृ.8

53. डॉ. सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ. 510-511

54. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 180

55. वही; पृ. 185

56. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ.5

57. उद्धृत- डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 75

58. डॉ. श्याम परमार; भारतीय लोकसाहित्य; पृ. 73

59. पं. शिवदयाल जोशी; लोकगीतों में रस योजना; पृ. 21

60. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 106

61. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.27

62. पं. सूर्यकरण पारीक; राजस्थानी लोकगीत; पृ. 22-25

63. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 107-108

64. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 238

65. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 137

66. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 240

67. उद्धृत- डॉ. हरि सिंह पाल; ब्रज लोक-काव्य : सामाजिक संदर्भ; पृ. 134

68. डॉ. विष्णुदत्त शर्मा; ब्रज में विविध औसरन पै गाये जाबे वारे लोकगीत; सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; पृ. 33

69. वही; पृ. 33-34

70. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 199-200

71. वही; पृ. 208

72. वही; पृ. 208

73. डॉ. विष्णुदत्त शर्मा; ब्रज में विविध औसरन पै गाये जाबे वारे लोकगीत; सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; पृ. 35

74. डॉ. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ; ब्रज लोकगीतन में पर्व; सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; पृ. 65

75. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ.250

76. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.272